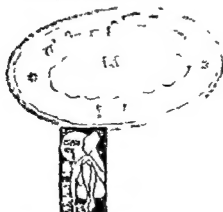
'प्रसाद' साहित्य की अन्तश्चेतना

डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित
पी एच० डी०, डी० लिट्०
हिन्दी विभाग
जोधपुर विश्वविद्यालय



कलम घर प्रकाशन

मूल्य : १५ रुपये सजिल्द
१९७३



प्रकाशक
कलमघर प्रकाशन
त्रिपोलिया रोड, पोकरण हाउस
जोधपुर

मुद्रक
कलमघर प्रेस, जोधपुर

गुरुवर
पं. हरिकृष्णजी अवस्थी
के वर्चस्वी व्यक्तित्व को
समर्पित

"इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रान्त-भवन में टिक रहना।
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं ।।

× × ×

×'विष प्याली जो पी ली थी वह मदिरा बनी नयन में।
सौंदर्य पलक प्याले का अब प्रेम बना जीवन में।'

' जिसके आगे पुलकित हो जीवन है सिसकी भरता,
हाँ मृत्यु नृत्य करती थी मुसक्याती खड़ी अमरता।
वह मेरे प्रेम विहँसते जागो, मेरे-मधुवन में—
फिर मधुर भावनाओं का कलरव हो इस जीवन में।'

× × ×

×'मेरी भूल ही तेरा रहस्य है इसलिए कितनी ही कल्पनाओं में तुझे खोजता हूँ, हे मेरे चिर सुन्दर।'

× × ×

×'उज्ज्वल वरदान चेतना का सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं ...'

'समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था।
चेतनता एक विलसती आनन्द अखण्ड घना था।'

• पुरोवाक् •

प्रसाद के व्यक्तित्व और कृतित्व से सम्बन्धित इतने सारे ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं कि अब कुछ भी नया लिखना कठिन एवं सन्दिग्ध ज्ञात होता है, किन्तु देखा जाए तो अभी इस विषय के अध्ययन-अनुशीलन की सम्भावनाएँ निःशेष नहीं हुई हैं। वस्तुतः ज्ञान की इति नहीं है, समयानुकूल उसके नए-नए पक्ष उद्घाटित होते रहते हैं। प्रसाद-साहित्य के मूल्यांकन के पीछे यही अन्तर्प्रेरणा कार्य करती रही है, फलतः यह पुस्तक आपके सामने है।

प्रस्तुत ग्रन्थ मूल रूप से एकयुग (१२ वर्ष) पूर्व लघुप्रबन्ध रूप में लिखा गया था और इसमें मुख्यतः प्रसाद के प्रेमादर्श का प्रतिपादन किया गया था, किन्तु धीरे-धीरे इसमें इतना सारा परिमार्जन-परिवर्द्धन हुआ है कि आज इसका मूल रूप ही प्रायः परिवर्तित हो गया है। प्रसाद के प्रेम-दर्शन का दिग्दर्शन करते-कराते इसमें उनके सौंदर्यबोध, तारुण्यबोध, कामाध्यात्म्य, आनन्दवाद आदि का भी समावेश कर लिया गया और इस प्रकार उनकी विचारधारा का अधिकांश इसमें समाहित हो गया। वस्तु अब इसे प्रसाद साहित्य की अन्तश्चेतना के रूप में ग्रहण करना ही समीचीन है।

इस ग्रन्थ के मुख्य ३ स्तम्भ हैं-प्रेमभावना, सौंदर्य संवेदना और आनन्दसाधना। प्रेम तत्त्व प्रसाद की अन्तश्चेतना का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है अस्तु इस सन्दर्भ में उनके प्रेमपरक दृष्टिकोण, प्रेम की प्रक्रिया आदि की विवेचना की गई है प्रसाद के इस प्रेम-दर्शन के अनेक भेद-प्रभेद हैं, जैसे—व्यष्टिगत प्रेम और समष्टिगत प्रेम। व्यष्टिगत प्रेम के अन्तर्गत-नर-नारी-प्रेम (प्रेमीयुग्म) प्रसाद की नारी भावना, विवाह, दाम्पत्य, मुक्त (रोमैंटिक) प्रेम, वात्सल्य प्रेम, भ्रातृ प्रेम, सख्य प्रेम, दास्य प्रेम आदि का विवेचन किया गया है और समष्टि प्रेम के अन्तर्गत राष्ट्रप्रेम (राष्ट्रीयता), विश्वप्रेम (मानवता-वाद=लोक संग्रह) भगवत्प्रेम (भक्ति, अध्यात्म, रहस्यदर्शन) आदि का। प्रकृतिप्रेम

की व्याख्या पृथक रूप से की गई है क्योंकि उसमें प्रसाद की प्रेम-सौंदर्य-आनन्द आदि सारी अनुभूतियों का समाहार है। इसी स्तम्भ में प्रसाद के प्रेम-सिद्धांतों (उसके प्रमुख चिंतन-सूत्रों) का आकलन किया गया है और इस प्रकार प्रसाद के प्रेमादर्श का सर्वांगीण समुपस्थापन करने का यत्न किया गया है।

द्वितीय स्तम्भ में प्रसाद की सौन्दर्य-सचेतना का विश्लेषण किया गया है यहाँ प्रसाद का सौंदर्य-चिंतन और सौन्दर्य-चित्रण ही मेरा मूल मंतव्य रहा है। इसके अंतर्गत प्रसाद के रूपबोध, उनके सौंदर्य के मूलाधार अंग-प्रत्यंग सौष्ठव (नखशिख), सौंदर्य-प्रसाधन और विविध सौंदर्य रूढ़ियों का विवेचन किया गया है। वस्तुतः प्रसाद एक सौंदर्यचेता कवि हैं। सौंदर्य-विधान उनकी अन्तश्चेतना का केन्द्र बिन्दु है। अतः इस पक्ष की उपयोगिता निर्विवाद है। इसी क्रम में प्रसाद के तारुण्यबोध पर भी विचार किया गया है, ताकि प्रसाद के प्रेम-सौंदर्य-यौवन का एकत्र मूल्यांकन किया जा सके।

तृतीय स्तम्भ प्रसाद के काव्याध्यात्म्य और आनन्दवाद से सम्बन्धित है। इसमें यही स्थापित करने का विनम्र प्रयास किया गया है कि प्रसाद का प्रेम-सौन्दर्य ही अन्ततः आनन्द रूप में परिणत हुआ है। वस्तुतः उत्तरवर्ती साहित्य में उनका रूप-सौन्दर्य, भूमा के विराट सौंदर्य में, उनका प्रेम विश्वमैत्री में, उनकी यौवनानुभूति, नियति करुणा और बनारसी मस्ती आनन्द अनुभूति में, उनकी प्रकृति महाचिति के रहस्य-दर्शन में एवं उनकी समग्र अन्तश्चेतना काव्याध्यात्म्य रूप में परिणत होती दिखती है। उदात्तीकरण की यह प्रक्रिया प्रसाद-साहित्य के अध्ययन का एक विशिष्ट आयाम है। मैंने यहाँ शास्त्रीय जटिलता का पूर्ण निराकरण करके मात्र आलोच्य विषय में अन्तर्भुक्त करते हुए प्रसाद की आनन्दवादी-साधना का व्यावहारिक प्रतिपादन किया है ताकि वह अधिकाधिक सुग्राह्य हो सके। प्रसाद के इस आनन्दवाद का विवेचन विश्व प्रेम (समष्टि प्रेम) अध्याय के अन्तर्गत भी प्राप्य है। इन तीनों तत्वों में पूर्वापर क्रम है अर्थात् प्रसाद के प्रेम-सौंदर्य एवं आनन्द तत्व परस्पर सम्पृक्त हैं और यह भी स्पष्ट है कि प्रसाद की इस अन्तश्चेतना का विकास क्रमिक गति से होता रहा है।

इस प्रकार प्रसाद-साहित्य के एक महत् पक्ष के अध्ययन-विषयों का यह एक

लघु प्रयास है। इस ग्रन्थ की अधिकांश सामग्री समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी है। इससे मुझे बड़ी प्रेरणा मिली है, अस्तु उन प्रकाशकों और पाठकों के प्रति आभार।

यह लघु प्रबन्धक मूलतः स्व० गुरुवर डॉ० ब्रजकिशोर जी मिश्र (लखनऊ विश्वविद्यालय) के निर्देशन में लिखा गया था। वस्तुतः उनके ज्ञानगौरव से अभिभूत होकर ही मैंने प्रसाद को एक सर्वप्रिय अध्येय (और आराध्य जैसे) कवि रूप में ग्रहण किया था। ग्रन्थ को प्रकाशित देखकर निश्चय ही उनकी पुण्यात्मा प्रसन्न होगी।

विश्वास है, अपनी समस्त सीमाओं और सम्भावनाओं से युक्त मेरा यह पहला प्रबन्ध प्रसाद-साहित्य के अध्येताओं का प्रेरणा-प्रमाद प्राप्त करेगा, यो-'जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरही। सो श्रम बादि बाल कवि करहीं॥'

जोधपुर

'प्रसाद जयंती' १६७३ ई०

(सूर्यप्रसाद दीक्षित)

अनुक्रम



प्रसाद का कृतित्वमय व्यक्तित्व और जीवनदर्शन

आधुनिक साहित्यकारों में प्रसादजी का व्यक्तित्व सर्वाधिक रहस्यपूर्ण है, कारण, वे स्वयं 'आत्म' के प्रति सदैव मौन रहे हैं। उनके जीवन वृत्तान्तों से संबंधित बाह्य संस्मरणों द्वारा किसी निश्चित धारणा की उपलब्धि नहीं हो पाती, क्योंकि ऐसे अनेक बहिस्साक्ष्य प्रायः कपोल-कल्पित होते हैं। कवि की मृत्यूपरांत उससे घनिष्ठता सिद्ध करने के प्रयोजन से इन संस्मरणों का स्वेच्छाविस्तार पूर्ण रचना कर ली जाती है। समसामयिक साहित्यिकों द्वारा प्रस्तुत अभिमत भी सर्वथा निस्सार नहीं कहे जा सकते हैं। ये या तो निन्दा-स्तुतिपरक होते हैं या रागद्वेष युक्त। समीक्षा क्षेत्र की दोनों प्रतिवादी स्थितियाँ हैं और इसीलिए अप्रामाणिक तथा अस्वीकार्य ज्ञात होती हैं। लेखक की स्वयं घोषित उक्तियों (आत्मकथनों) में भी न्यूनाधिक छद्म कथन हो सकते हैं, क्योंकि सर्जक का नितांत आत्मनिर्लिप्त हो सकना अविश्वसनीय कहा जाता है। वह अन्यथा प्रशंसा व आत्म-विज्ञापन या आत्मश्लाघा का प्रच्छन्न प्रयास करता रहता है। ऐसी स्थिति में मान्य हैं—वे सिद्धान्त जो उसके साहित्य में अन्तर्ग्रथित या अन्तर्व्याप्त रहते हैं और कवि चेतन, अचेतन या ज्ञात-अज्ञात रूप से उनकी पुष्टि अथक आवृत्ति करता रहता है। इन सहज सचेत उच्छलित भावोद्रेकों में वाग्वंचना की आशंका कम रहती है। कृतिकार की बद्धमूल धारणाएँ और उसके अन्तरंगी भाव-स्फुरण इन कवि प्रोक्तियों में प्रतिबिम्बित हो उठते हैं। ऐसी उक्तियों में सहज प्रवाह, अनिमेष भावप्रवणता और संवेदन का रस रहता है, जो समालोचक पाठक को आकृष्ट कर लेता है। व्यक्तित्व-निरूपण का यह सर्वाधिक आवश्यक साक्ष्य है। इस सन्दर्भ में इलियट की उक्ति स्मरणीय है। उसने सृष्टा और भोक्ता को पृथक् स्वीकार किया है और इस पार्थक्य को ही 'कवि सिद्धि' घोषित किया है। निश्चय ही यह निर्वैयक्तिकता सर्जक की साधना है, तथापि किसी काल में उसका तादात्म्य स्थापित होना भी स्वाभाविक है।

यह पात्र उसका मानस पुत्र होता है, जिसे वह अपनी आत्मा के रस से अभिषिक्त करता है और जिसकी रूप-रचना वह बड़ी अन्तर्लीनता-मनोमुग्धता अथवा मनस्समाधि द्वारा करता है। ये पात्र सामान्य पात्रों की अपेक्षा अधिक संस्फूर्त और विचारोत्तेजक होते हैं। कवि का अवचेतन इन पात्रों में जीवनादर्श के प्रति अगत अपना भी हो जाता है। प्रसादजी का जीवनदर्शन भी ऐसे उनके समृष्ट पात्रों द्वारा व्यंजित या ध्वनित होता है, जिस घनत्व के आधार पर अंगीकार किया जा सकता है।

प्रसाद की व्यक्तित्व-चेतना अन्तर्मुखी है। कवि का हृदय जीवन के कोलाहल तथा संघर्ष से दूर किसी एकान्त में 'घन प्रेमतरु तले' छाँह लेने का अभिलाषी है। काम की महत्ता देते हुए भी प्रसादजी ने सघर्षेच्छा से उपरत होने की धारणा व्यक्त की है। कर्तव्य कठोर जीवन के प्रति कवि का अन्तर्मन कुछ विरक्त सा है, परिणामत. वह तीव्र संघर्ष से प्रयाण करके मन प्रसाद एवं वैराग्य को वरण करता है। प्रसाद के प्राय सभी जीवंत पात्रों की परिणति निर्वेदमूलक है। स्कन्दगुप्त जीवन भर हूणों के विरुद्ध संघर्ष करता हुआ 'जीवन के शेष दिन किसी कोने में बिताने के लिए उत्सुक है। महान् क्रूरकर्मा चाणक्य मन में अन्तर्निहित आत्म-चैतन्य की उपलब्धि करके वैराग्य ग्रहण करता है। प्रसादजी का एक उद्दत पात्र–'अजातशत्रु' अन्त में 'पावन' हो जाता है। रानी कामना विदेशी युवक विलास के ऐन्द्रजालिक प्रभाव से मुक्त होकर स्वर्ण मदिरा का त्याग करके मातृत्व की भावना करती है। प्रसाद का आरम्भक मनु उद्दाम सघर्षों में आत्मग्न होकर अन्त में पशुभूत तथा समरसीभूत होता है। इनके अतिरिक्त भी अनेक ऐसे पात्र हैं। और सत्य तो यह है कि प्रसाद का प्रायः प्रत्येक गतिशील एवं जीवन्त पात्र अतन्त: इसी मन शान्ति या मन वैराग्य की ओर उन्मुख होता है। वह पहले संघर्ष की पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है, किन्तु उसकी परिणति अनिवार्य रूप से मनोनिग्रह में होती है। यह मानसिक परिवर्तन या तो प्रणय द्वारा सम्पन्न हुआ है या फिर निजी जीवनानुभूति द्वारा। कवि ने प्राय. सौंदर्य एवं प्रणय से अभिभूत करके तरुण पात्रों को वशीभूत किया है या फिर उनका अन्त करा दिया है। प्रसाद के सभी प्रौढ़ पात्र वार्धक्य के कारण चित्त वृत्तियों को शमित करके मानसिक साधना को

और प्रवृत्त होते हैं। पलायन ऐसे पात्रों का मानसिक निदान है। मनु की उक्ति—'लेचल इस छाया के बाहर मुझको दे न यहाँ रहने' या बिम्बसार का यह कथन—'एक शीतल निश्वास लेकर विश्व के वात्याचक्र से दूर हो जाओ +' "यदि मैं सम्राट न होकर किसी कोमल किसलय के झुरमुट में कोई अधखिला फूल होता।"

× 'सब क्षणिक सुखों का अन्त है' (अजातशत्रु)

× 'यदि दो घड़ियों का जीवन कोमल वृन्तों में बीते।

कुछ हानि तुम्हारी है क्या चुपचाप चू पड़े जीने।' (आँसू)

× 'ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे धीरे।'

.. तज कोलाहल की अवनी रे। (लहर)

ये उक्तियाँ प्रसादजी की मानसिक औदास्य-वृत्ति की परिचायक हैं। इन साक्ष्यों के आधार पर इतना स्वीकार्य है कि 'प्रसादजी' अपने जीवन के उत्तर काल में निस्पृह या विरत से रहे हैं। इसके पीछे अवश्य ही कोई न कोई मानसिक आघात अथवा गम्भीर प्रतिक्रिया है। जीवन के विकास काल में वे यौवन के राग-रंग में जितने संलिप्त रहे हैं, उसका संकेत भी उनके काव्य में प्राप्य है। 'कामायनी' में देवजाति का ऐश्वर्य-विलास वस्तुतः प्रसादजी के सुख-वैभव तथा यौवन विलास का भी सूचक है। प्रलय के पश्चात् मनु का आत्मरोदन-'गया सभी कुछ गया मधुरतम' जैसे प्रसादजी की ही मर्मव्यथा व्यक्त करता है। निस्सन्देह यह कवि के भुक्त क्षणों की अनुभूति है। उनकी अभिव्यक्ति में ईमानदारी है। कवि की सम्वेदना मूलतः यथार्थ से उद्भूत है। भावेशवश वह बौद्धिक धरातल से कुछ दूर चली गई है। प्रसादजी कल्पनोन्मुखी कवि हैं, अतः इन उक्तियों का उतना ही अंश ग्राह्य है, जो सम्वेदनाओं का उल्लेख मात्र करता है। प्रसादजी की सम्वेदनाएँ कहीं-कहीं असंयत भी हो गई हैं। ऐसी स्थिति में उनका यथार्थ ही स्वीकार्य है, जैसे आँसू की विरह-वेदना से इतना स्पष्ट है कि कवि के अन्तर में कोई प्रणयानुगत आकांक्षा या लालसा है। उत्तरार्द्ध में कवि संयम एवं बौद्धिक समझौता आरोपित करता है। इस नीति और सन्तोष से भावना का प्रवेग बाधित हो गया है। मन की अधीर कामनाओं का दमन करने में प्रसाद के कवि हृदय में कुंठा की अनेक

प्रवृत्तियाँ विकसित हुई हैं। कवि बहुत समय तक स्वयं भी त्याग की शाब्दिक प्रवचना या आत्मछलना नहीं कर पाता, इसीलिए अधिक भावाकुल हो उठता है। सुवासिनी (चन्द्रगुप्त) द्वारा कथित यह उक्ति— 'समझदारी आने पर यौवन चला जाता है' वस्तुतः प्रसादजी की मौन अनुभूति को सशब्द कर देती है। प्रौढ़ कवि न तो उस प्रवृत्ति जन्य कुंठा का निवारण कर पाता है और न अपने भाव-गाम्भीर्य तथा विवेक के कारण इन अभावों के प्रति कातर-क्रन्दन ही कर सकता है। यह घुटन एक अन्तर्द्वन्द्व के रूप में प्रसाद-साहित्य में अन्तर्व्याप्त है। इसकी मुक्ति के लिये कवि सामरस्य की साधना करता है और उसे आनंद का हेतु घोषित करता है। स्पष्ट है कि 'कामायनी' का यह सन्देश प्रसादजी की जीवनानुभूतियों के आत्म-साक्षात्कार का ही प्रतिफल है।

प्रसाद-साहित्य के विकासात्मक अध्ययन के आधार पर उनके मानसिक गठन अथवा उनके वैचारिक अनुपग का निर्णय किया जा सकता है। प्रसाद की आरम्भिक कवितायें प्राय: दर्दे दिल, इश्के मिजाजी और सतही शृंगार से ओत-प्रोत है। प्रौढ़ काल में कवि प्रत्यक्ष अभावों का विस्मरण कर स्वयं को पुरातन में भुला देना चाहता है और दूसरी ओर अतीत सुखों को अवहेलनाकर अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण भी करना चाहता है–'भूलता ही जाता दिन रात सजल अभिलाषा कलित अतीत'। फिर भी वर्तमान की अपेक्षा कवि विगत वैभव के प्रति अधिक आसक्त है। 'कामायनी' में विगत जीवन के मदन, वर्तमान की दुर्दशा तथा अनागत का नैराश्य जिस आवेग के साथ अभिव्यंजित हुआ है उससे मनु का चीत्कार प्रसाद की निजी उद्विग्नता (चिन्ता) के रूप में पर्यवसित हो गया है— किन्तु जीवन कितना निरुपाय लिया है देख नहीं सदेह। निराशा है जिसका परिणाम सफलता का वह कल्पित गेह।" इन उक्तियों में कवि की प्रगल्भ वेदना मुखरित हुई है। प्रसादजी यहाँ अमुक्त प्रणय या गर्हित स्नेह के आश्रय हैं। आँसू की घनीभूत पीड़ा में वस्तुतः कवि की भी अन्तर्प्रतीति है। आरम्भिक गीतों में कवि इसी अभाव का रहस्योद्‌घाटन करता हुआ भाव विह्वल वाणी में कहता है–
'मुझको न मिला रे कभी प्यार।
....पागल रे वह मिलता है कब

उसको तो देते ही हैं सब। आँसू के कण गिन गिन कर,

यह विश्व लिये है ऋण उधार..।' (लहर)

वेदना से व्यथित होकर कवि दर्शन का आह्वान करता है और विरोधी स्थितियों में मानसिक समझौता स्थापित करने का प्रयत्न करता है। आँसू में विश्व-वेदना की सर्वव्यापकता का उल्लेख करता हुआ प्रसाद का कवि 'चिरदग्ध दुखी' की ओर दृष्टिपात करता है और इस 'विश्व सदन' में 'दुखवाद' की प्रतिष्ठा करके व्यष्टि और समष्टि को समन्वित करता हुआ आत्म से परे हो जाने का उपक्रम करता है। वर्तमान जीवन से पलायित होकर अतीत की ओर उन्मुख होने का भी यही रहस्य है। कवि वर्तमान से विरक्त और अतीत से आकृष्ट है। उसकी आत्मस्वीकारोक्ति के अनुसार भी– 'साहित्य में अतीत और करुणा का जो अंश है, वह मुझे आकर्षित करता है।' (विशाख)। एतदर्थ प्रारंभिक नाट्य कृतियों में बौद्ध दर्शन, शून्यवाद, अनात्मवाद और दुखवाद को प्राथमिकता एवं महत्ता दी गई है। 'विशाख', 'राज्यश्री' और 'अजातशत्रु' के रचनाकाल तक प्रसादजी इसी दुखवाद से उत्प्रेरित हैं। उनके कथा-साहित्य में भी सालवती, देवरथ एवं अशोक आदि कहानियाँ बौद्धदर्शन के मूल आर्य सत्यों से प्रणोदित हैं। इसी धरातल पर सहसा दुखवाद की गम्भीर प्रतिक्रिया होती है। स्कंदगुप्त में लेखक बौद्ध श्रमणों और वैदिक ब्राह्मणों की गतिविधि का तुलनात्मक विवेचन करता हुआ करुणा एवं आनन्द की परीक्षा करता है। 'चन्द्रगुप्त' में वह बौद्धों की निष्क्रियता का खंडन करता है और वहाँ चाणक्य के सर्वोत्तम ब्राह्मणत्व को सार्वभौम मानव बुद्धि वैभव के रूप में प्रतिष्ठित करता है। 'इरावती' में लेखक बौद्ध दर्शन पर स्पष्ट व्यंग्य-प्रहार भी करता है और साथ ही शैवागम तथा आनन्दवाद के संकेत भी देता है। यहीं से प्रसादजी शुष्क दुख के स्थान पर उल्लास अथवा आनन्द का निर्देश प्रतिपादित करते हैं। 'एक घूँट' 'कामना' और 'कामायनी' में वे इसे ही जीवन का विकास और शाश्वत सत्कार घोषित करते हैं तथा आत्मबोध के रूप में प्रज्ञा तत्त्व की प्रतिष्ठा करते हैं। प्रसाद साहित्य की रचना प्रक्रिया उनकी जीवन प्रक्रिया के ही अनुरूप दिखाई देती है। आरम्भ में वे पारिवारिक दुख (विघटन) एवं अन्य सांसारिक

भावनाओं के कारण क्षुब्ध ज्ञात होते हैं और तब बौद्ध दर्शन से तादात्म्य अनुभव करते हैं। अनन्तर वे सक्रिय होते हुए सुख-दुःख का सन्तुलन करते हैं और शैवागम से आकृष्ट होकर आनन्दभावना की ओर अग्रसर होते हैं। कथा-साहित्य में भी उनकी यही गति है। 'कंकाल' का स्वरूप विध्वंसात्मक है, 'तितली' में सर्जनात्मक है और 'इरावती' में तत्त्वचिंतन की ओर प्रवृत्त हैं, अस्तु स्पष्ट है कि प्रसाद की जीवन-यात्रा वेदना से आनन्द की ओर अथवा अभाव से भाव की ओर उन्मुख रही है। उनका साहित्य आत्मरोदन से आरम्भ होकर शनैः शनैः आस्था (मन प्रसाद) की स्थिति तक पहुँचता है और अन्ततः आत्मानन्द प्राप्त करता है। कामायनी में यह विकासक्रम स्पष्टतः द्रष्टव्य है।

प्रसादजी के कतिपय पात्र उनकी बद्धमूल धारणाओं, उनकी मनोवृत्तियों या बद्ध संस्कारों के भावात्मक प्रतिनिधि जैसे ज्ञात होते हैं। उनका 'चाणक्य' आत्म-चैतन्य का प्रतीक है, दाण्ड्यायन बौद्धिक आभिजात्य का आदर्श और मिहिरदेव निर्झर की भाँति प्रवाह भाव तथा निश्छल अन्तरात्मा का सवाहक है। उनके हृदय का सौकुमार्य कुछ नारियों द्वारा व्यक्ति हुआ है, जैसे मालविका, देवसेना, सुवासिनी, चम्पा आदि। मालविका मूक प्रणय और निरीह समर्पण की प्रतीक है और देवसेना उदारता, करुणा, शोकमय, औदार्य तथा त्याग भाव की प्रतिनिधि है। प्रसादजी आजीवन कर्त्तव्य एवं भावना के द्वन्द्व में आन्दोलित रहे हैं, तभी उनके पात्रों में यह अन्तर्द्वन्द्व इतनी तीव्रता के साथ ध्वनित हुआ है। 'आकाशदीप' की चम्पा और 'पुरस्कार' की मधूलिका इसी मनः संघर्ष की साक्षी है। कवि व्यावसायात्मिका वृत्ति के प्रति अप्रस्तुत एवं अनभिभूत रहा है, तभी उसने इरा, तारा और अनेक अन्य पात्र-पात्रियों का ऐसा मन संस्कार किया है। प्रसादजी भावुकता में अधिक आस्थावान् हैं। उनके भावोद्गार कार्नेलिया, सुवासिनी, मालविका और अन्य कई प्रमुख पात्रों द्वारा मुखरित होते हैं। अपने कवि रूप के प्रति प्रसादजी के मन में अनवरत (शायद अपवाद रूप में हो) वितृष्णा का भी भाव रहा है। मातृगुप्त के कथनों द्वारा उन्होंने एक ओर कवि के भावोद्गारों का परिचय दिया है और दूसरी ओर इसे 'कल्पनामय अभाव्य जीवन' घोषित किया है। उनका कवि

रूप प्रणयी की अवस्था में भाव विभोर है। कवि का संकल्प है कि उसकी भावनायें नीरव ही रहें। उन्हें बोलने का अधिकार न हो। इस आत्मगोपन के पीछे लोक भय और आत्मालोचना की अनेक ग्रन्थियाँ हैं।

इस भावुक रूप के अतिरिक्त कवि का एक दार्शनिक या विचारक रूप भी है। प्रसादजी अन्तर्दर्शन की ओर आद्यन्त सचेष्ट हैं। उनके अनेक पात्र जैसे 'चाणक्य' का दाण्ड्यायन 'जनमेजय का नागयज्ञ' के व्यास 'विशाख' के प्रेमानन्द 'अजातशत्रु' के बुद्ध आदि विलक्षण आत्मद्रष्टा हैं। दाण्ड्यायन जैसे पात्र अपने आप में अनन्य हैं। इन पात्रों में प्रसाद का आत्मप्रक्षेपण है। कवि अपने गम्भीर क्षणों में प्राय: तत्त्वचिंतन की ओर उन्मुख हो जाता है और जीवन के समस्त सत्य को इसी आत्म दर्शन द्वारा उपलब्ध कर लेता है। निष्क्रिय दर्शन की एक अति मरणोत्कण्ठा (मुमूर्षा) में दिखाई देती है जहाँ जीवन की निस्सारता अनस्तित्व का रूप धारण कर लेती है। प्रसाद के अनेक पात्र उद्दाम जिजीविषा से अनुप्राणित हैं, किन्तु कुछ पात्र मुमूर्षा भाव से भी आन्दोलित ज्ञात होते हैं जैसे—उनकी 'गुण्डा' कहानी का नायक 'नन्हकूसिंह' जो जीवन को अनुपयोगी समझकर मृत्युकामी बन गया है। 'चिन्ता' सर्ग में मनु की यही स्थिति है। दर्शन को प्रसादजी ने प्राय: व्यावहारिक धरातल पर ही अवतरित किया है। दर्शन केवल सुविज्ञ विचारकों का ही विषय नहीं है बल्कि प्रत्येक व्यक्ति का अपना जीवन दर्शन होता है। उनकी 'मधुआ' कहानी इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण है। 'मधुआ' के निरक्षर शराबी के शब्दों में—'एक लम्बे दुःखपूर्ण जीवन की अपेक्षा सुख का एक क्षण अधिक मादक है। इन क्षणों की प्रतीक्षा में शेष दिन काटे जा सकते हैं।' यह दार्शनिक उक्ति प्रसादजी की अपनी सुखवादी भावना की देन है। वे निर्वेद को जीवन का चरम बोध मानते हैं किन्तु वे मोक्षवादी नहीं हैं अपितु बोध और भोग की सीमा पर खड़े हैं।

मानव हृदय के रहस्योद्घाटन की दिशा में प्रसादजी की सूक्ष्म दृष्टि गई है। वे मानव हृदय को 'नियमों के बन्धन' नहीं रखना चाहते। हृदय का सञ्चरण और विचरण किसी सुनिर्धारित विधि या 'धातु दे' से प्रतिबद्ध नहीं होता, वरन वह नियमन होता

रहता है उनके मतानुसार राग तत्त्व में इतनी क्षमता है कि वह द्वेष का उन्मूलन कर सकता है वस्तुत प्रेम द्वेष को पराजित करता है। इसमें औदात्य भी हो सकता है किन्तु प्रसाद की दृष्टि में यह अधिरोपण उदात्त है। प्रसादजी के ये भाव-स्फुरण उनकी ही भाव-वृत्तियों के विविध रूप हैं। वस्तुत उनका प्रत्येक जीवित पात्र उनके व्यक्तित्व का आंशिक प्रतिनिधि है। इन्हीं स्फुट विचार-कणों द्वारा उनके व्यक्तित्व का निर्णय किया जा सकता है।

प्रसादजी की मूल भाव वृत्ति आभिजात्य में घनीभूत है। उनकी कृतियों के अधिकांश पात्र कुलीन, राजन्य व वीर, सम्पन्न अर्थात् परिपूर्ण मानव हैं न कि लघु-मानव। उनका साहित्यिक परिवेश भी प्राय विभवपूर्ण है। प्रसादजी में आत्म के प्रति विचित्र निर्लिप्तता है। इसी तादात्म्य भाव के कारण लेखक ने अनेक समस्याओं को अनिर्णीत रखा है उसमे रहस्य व अज्ञात तत्व की प्रवृत्ति है। आँसू के सबध में प्रकट की गई शंकाओं का निराकरण न करने से यही तथ्य पुष्ट हुआ है। अपने जीवन में प्रसादजी आत्मकेन्द्रित रहे हैं। बाह्य जगत के प्रचार प्रसार, प्रदर्शन विज्ञापन, साहित्यिक दलों की गतिविधि, समसामयिक साहित्यिकों के आक्रमण प्रत्याक्रमण आदि से वे आजीवन असम्पृक्त से रहे हैं। उनके साहित्यिक विकास को देखते हुए यह प्रकट है कि वे अपने प्रारम्भिक जीवन (किशोर काल) मे जितने उन्मथित थे, प्रौढ़काल में उतने ही गभीर और अनासक्त थे। उल्लास का कारण था—कुल वैभव, विषाद का कारण था पारिवारिक विघटन एव अतृप्त दाम्पत्य और गाम्भीर्य का कारण था कवि का आत्ममनन, जिसकी गरिमा का सतत निर्वाह उनके लिए प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया था।

नारियों के सबध में व्यक्त किए गए प्रसादजी के अभिमत भी पर्याप्त 'समतल' हैं। नारीत्व के प्रति उनके मन मे सहज निष्ठा रही है। उनके अधिकांश नारी पात्र अपने चारित्रिक वैशिष्ट्य के कारण अत्यन्त तुंग ज्ञात होते हैं। इनकी कई कोटियाँ हैं। प्रथम कोटि में उनकी नारियाँ सौन्दर्य और तरल भाव की प्रतीक हैं—'इस अर्पण में कुछ और नहीं केवल उत्सर्ग छलकता है।' (कामायनी) यह स्थिति प्रसादजी की

अभीष्ट रही है। वे नारी-जीवन की गरिमा के पुजारी हैं। कहीं-कहीं उनके नारी पात्रों के अतिशय आदर्श रूप की कल्पना आरोपित सी ज्ञात होती है, किन्तु उनकी नारी भावना मूलतः एक अनुभूत सत्य है। दूसरी कोटि में लेखक ने 'मादक', मोहमयी' तथा 'छलना' नारी को रखा है और तीसरी स्थिति में उसे कर्त्तव्यपरायणा माना है। अस्तु उनके नारी पात्र एक ओर रहस्यपूर्ण, वासनाविधायक, छलनामयी, हीनप्रवृत्ति–पीड़ित, रूपाजीवा, यौवनातृप्त, प्रणयवंचिता प्रतिशोधातुरा (जैसे–मागधी, मालिनी, छलना, विजया, दामिनी, लीला, सुरमा, अनन्तदेवी आदि) नारियाँ है, तो दूसरी ओर भावुक, कर्त्तव्य-परायणा (जैसे श्रद्धा, देवसेना, मधूलिका, चम्पा, तारावती, ममता, कार्नेलिया, मालविका, मल्लिका, वाजिरा, पद्मावती, देवकी, तितली, इरावती, यमुना, घण्टी, कोमा, ध्रुवस्वामिनी, राज्यश्री, सुवासिनी आदि) नारियाँ हैं। इससे इंगित है कि प्रसाद 'विश्व-प्रहेलिका के रहस्य बीज नारी-जीवन की ओर आकृष्ट होकर फिर कुछ प्रवंचित हुए हैं। उनका दाम्पत्य भी खंडित (अतृप्त) रहा है। सम्भवतः इसीलिए कवि स्वप्निल (आदर्श) नारी की कल्पना करता है और नारी को केवल 'श्रद्धा' घोषित करता रहा है, जिससे कवि की भाव एवं भावुक प्रकट होती है। कहीं-कहीं आक्रोश वश वह नारी-निंदा भी करता दिखाई देता है। एक स्थल पर विक्षिप्ता देवसेना के मुख से वह पुरुष को वशीभूत करने का नामूंसा तन बताता है। उसकी कुछ उक्तियाँ, जैसे 'छलना थी तो भी उस पर मेरा विश्वास घना था।' (आँसू)

× 'जब आये थे तुम छुपके से रजनी के पिछले पहरों में.... ।' (कामायनी)

• × यौवन की प्रथम ग्रीष्म की अर्द्धरात्रि....(अजातशत्रु)

× ' आलिंगन में आते आते, मुस्क्याकर जो भाग गया' (लहर)

निश्चय ही कुछ गूढ़ भाव व्यंजित करती हैं। अवश्य ही प्रसादजी को अनेक कटु मधुर अनुभव प्राप्त हुए हैं, जिनकी प्रतिच्छवि इन कृतियों में दृष्टव्य है। यद्यपि अनुभूत का आत्मघटित होना आवश्यक नहीं है, फिर भी प्रसादजी के इन मानस पुत्रों (पात्र-पात्रियों) की गूढ़ आन्तरिक अनुभूतियों में चरित का दर्पण बिम्ब आभास मिल जाता है।

प्रसादजी का यह अन्तर्विश्लेषण 'कामायनी' में सविशेष प्रस्फुटित हुआ है। 'कामायनी' के कथ्य में बहिर्जगत से अधिक अन्तर्जगत की अनुगूंज है। इस काव्य की रचना-प्रक्रिया और प्रसादजी की जीवन प्रक्रिया (कंगोर काल का ऐश्वर्य विलास), (देव-भोग), विकास काल का कर्म, विषाद, चिंता, संघर्ष) विचारक कवि की समन्वय साधना (सामरस्य तथा आनन्दोपदेश) में अद्भुत साम्य है। इन तीनों चरणों पर इच्छा, क्रिया, ज्ञान का 'त्रिपुरा रहस्य' सिद्धांत भी घटित हो सकता है। काशी नगरी की भी यही तीन विशेषताएं हैं और इस प्रकार शिव की यह पंचक्रोशी 'काशी' 'कैलाश' की प्रतिरूप बन सकती है। काशी के प्रति प्रसादजी के आत्मीयतापूर्ण उद्गार, 'गुण्डा' कहानी में प्रकट भी हुए हैं। वंशगत मर्यादा के अनुकूल प्रसादजी विप्रपूजक रहे हैं। उनमें क्षेत्रीय या जातीय संकीर्णता नहीं है। 'इरावती' में एक स्थान पर वे 'वैश्यों के धन को सबसे पवित्र सिद्ध करते हैं—जिसका तर्क सिद्ध आधार है—शेष समस्त साहित्य में वे धर्म जाति निरपेक्ष एवं निस्संग हैं।

प्रसादजी में आभिजात्य के लक्षण बड़े प्रबल हैं। उनकी कुछ कहानियों में यथार्थवाद के संकेत भले ही हों, पर अधिकांशतः उनका साहित्य उच्च, मध्य वर्ग को सम्बोधित है। इसीलिए मैंजनी के धर्मे थीएटर, चार आने के टिकट पर तांगे वालों के समक्ष अपने नाटकों का अभिनय उन्हें स्वीकार्य नहीं था। कवि की तटस्थता और निमग्न चेतना इसी आत्मस्मिता, आत्म-विश्वास एवं उच्च मनोवृत्ति की द्योतक है। कवि अपने अन्तर्तम में अहत्वा कांक्षी भी है। उनकी सहज प्रसन्न मुख-मुद्रा आन्तरिक विचार-वेदना की ही प्रतिक्रिया है। इस विचार-वेदना को व्यक्त करने हेतु कवि भावाकुल है और तभी वह प्रयोगोन्मुख है। प्रसादजी ने यथाप्राप्तोचितछन्द, बंगला छन्द, अंग्रेजी सानेट, उर्दू गजल, दोहा, गीत, मुक्त छन्द, प्रबन्ध, मुक्तक, गीतिकाव्य, दीर्घ कविता, एकांकी, अनेकांकी नाटक, समस्यानाटक, प्रतीक नाटक, पुराकथान, चम्पू, गद्यकाव्य, लघुकथा-विविध कथा-शिल्प, निबंध-शोध, समीक्षा, भाष्य आदि साहित्य रूपोंद्वारा अपनी वैचारिक वेदना को स्पष्टाकृत प्रकट की है। प्रसादजी के विविध साहित्यरूपों पर उनका कवि हावी है। उनके कवि-हृदय में विनशील संवेदनाएँ

हैं। यह मानसिक संघर्ष ही कवि के अल्प जीवन का कारण है और यही अन्तर्द्वन्द्व उनके साहित्य का प्राण है। अपनी उच्चवर्गीय मनोवृत्ति के अनुरूप प्रसादजी सौंदर्य प्रेमी हैं। उनका प्रत्येक पात्र मन और काया से सुन्दर है। सुन्दर के प्रति उनके हृदय में निसर्गत प्रेम है। यह सहज प्रेम ही उनके लिए सत्, चित, आनन्दस्वरूप है, इसीलिए कवि जीवन को संघर्ष न मानकर 'समरस अखण्ड आनन्द वेष' ही मानता है। निश्चय ही प्रसादजी सौंदर्य और प्रेम के कवि हैं। उनके इस जीवन दर्शन को चरितार्थ करके ही उनके साहित्य का तत्त्वबोध किया जा सकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रसादजी का जीवन दर्शन, इदमित्थम्' तो नहीं फिर भी आनुपातिक दृष्टि से, अधिकाधिक प्रमाण पुष्ट रूप में उनके कृतित्व के माध्यम से ही उपलब्ध है।

वस्तुतः प्रसादजी प्रेम और सौंदर्य के उद्‌घाटक हैं, अतः उनके व्यक्तित्व में सबसे प्रभावशाली, सबसे सतर्क और सबसे जागरूक अंश है—उनका कवि। उनकी सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति है—उनका कवित्व। 'प्रसाद' तत्त्वतः मानव प्रेम और सौंदर्य के कलाकार हैं। उनका अवचेतन मन मानवीय प्रेम रहस्य के स्नायुजालों में उलझा हुआ है। उनका साहित्य यद्यपि अभिजात की पीठिका पर आधारित है, फिर भी उसमें जन जीवन के संकेत हैं, जहाँ भावुकता है, पर संयम कम है, कल्पना है पर यथार्थ कम है। उनका अन्तःकरण भावुकता के गुलाबी रंग से रंगा गया है। उसमें रंग-बिरंगे भाव चित्र हैं, प्रेम हास-विलास के दृश्य हैं वहीं जीवन के सुदृढ़, राग-शोक और जन्म-मरण की असामान्य परिस्थितियाँ हैं। वहाँ उपयोगिता और भौतिकता गौण है। प्रसाद का कवि अन्तर्मुख है, जहाँ भावों की दुनिया का चहल-पहल है हृदय के घात प्रतिघात हैं अनुभूतियों के उत्थान-पतन हैं, भौतिक लौकिक जीवन की निषेधात्मक अवज्ञा है और धर्म तथा ध्येय की विधेयात्मक कल्पना है। डॉ० रामकुमार वर्मा के ये शब्द नितान्त ही बड़े उपयुक्त हैं—

'प्रसाद' जी इस युग के सबसे अधिक अनुभूतिशील कवि थे। वस्तुतः उनके काव्य का स्नायुजाल इसी जीवन के सुखद व सजीव अनुभूतियों के रक्त से पोषित व अनुप्राणित है। प्रणय वेदना या विरहावस्था के क्षणों में यह अनुभूति अत्यन्त प्रगाढ़ हो उठती है।'

प्रसादजी के काव्य में मानवीय भावना का विजयोल्लास है और उनके जीवन दर्शन में भविष्य की दृढ़ आस्था भी। उनके कवि में भौतिक आकांक्षा भी है, और अप्राप्य के प्रति स्पृहा भी। उनकी आध्यात्मिक साधना सांसारिक व्याघात, आशा-निराशा के द्वन्द्व और अन्तस्संघर्ष पर टिकी हुई है। कवि में बड़ी सजग तथा आत्मनिष्ठ अन्तर्दृष्टि है। उनके मन में अतीतगर्भी कल्पना है, वाणी में निस्तब्ध उच्छ्वास है और आत्मा में अनन्त के विलास की आनन्दानुभूति है। उनके काव्य की अन्तश्चेतना इन्द्रियग्राही ही न होकर हृदयग्राही है। वह मात्र शरीर ही न होकर आत्मस्पर्शी है। उनके ससीम में असीम विस्तार है जहाँ पारलौकिक रहस्यों की जिज्ञासा है और समस्याओं का विराट समाधान भी। उनके साहित्य में दो युगों की सन्धि है। उसमें उन्नीसवीं शताब्दी का रोमांस और बीसवीं शताब्दी का सन्त्रास, दोनों अन्तर्व्याप्त हैं।

प्रसाद की साहित्यिक संरचना बहुरंगी है। अतीत उनकी प्रतिभा का क्रीड़ा-क्षेत्र है पर उस अतीत में वर्तमान की उपस्थापना है और उस वर्तमान में भविष्य के सुनहरे सपने हैं, वैभव के चित्र हैं और पीड़ा के ऐश्वर्यमय रूप रंग हैं। उनके जीवन पर बुद्ध की करुणा की छाप और है शैव आनन्द की उपासना का उन्मेष भी। वे ज्ञान, भाव और कर्म के समन्वयकर्ता हैं। उन्हें जीवन की अखण्ड एकता पर विश्वास है। उनकी आत्मा में सांस्कृतिक निष्ठा है और आत्मानुभूति का बल भी। उनकी कला में विचित्र भाव-भंगिमा है और विलक्षण परिस्थितियों की अवतारणा भी। प्रसाद की कृतियों में यौवन स्फूर्ति है, भाववैदग्ध्य है, ग्रहण और त्याग का द्वन्द्व है, अनुराग और विराग का सतर्क संघर्ष है तथा यत्किंचित् विशृंखलताओं का समाहार भी है। उन्होंने इतिहास के भूमिचिह्नों में मानव मन की आकांक्षा, राष्ट्रीय संस्कृति और अध्यात्म साधना को प्राणवत्ता प्रदान की है और उसे कवित्व पूर्ण जोश के साथ उच्चरित किया है।

'प्रसाद' का जीवन-दर्शन प्रेमप्रसर है। वे मानवीय भावनाओं के कवि हैं। उनकी अनुभूति ऐकान्तिक है पर अभिव्यक्ति जनान्तिक है, जिसमें प्रेम-शृंगार का मन्द्र प्रवाह है, अनेक सांस्कृतिक अन्तर्धाराएँ हैं तथा इतिहास और संस्कृति से समन्वित

सर्वाधिक समसामयिक परिस्थितियाँ हैं। उन्होंने अनिषेधक एवं प्रतिमानवीय जीवन में प्रेमवृत्ति का रसात्मक सामंजस्य उपस्थित करके अपने काव्योपजीवी एवं भावप्रवण व्यक्तित्व का परिचय दिया है। जीवन की सम्यक् व्याख्या के लिये प्रसाद के पास शैव और बौद्ध दर्शन का आधार है, जिसे आधेय काव्य चरित्रों के साथ घटित किया गया है। इन चरित्रों में व्यक्तित्व की साँस है वेदना की गहरी टीस है आद्योपान्त रूप तथा यौवन का चटकीला रंग है अन्तस् के संगीत की विकल रागिनी है कहीं-कहीं विलास की उष्ण-गन्ध और तज्जनित मधुर प्रेम की पीड़ा है। यह पीड़ा मधुमयी है। यही आनन्द का हेतु है। प्रसाद के काव्य में निर्वेद के साथ साथ आत्मीयता है और काल्पनिक उड़ान के साथ आत्म प्रसार भी है। वे विषयोन्मुख न होकर आत्मोन्मुख हैं। जीवन के संघर्षों में अनिच्छुक होकर भी वे तटस्थ हैं—जो समाज भीरुता नहीं, कदाचित् प्रकृति प्रेम है पलायन नहीं, मनसिक विषाद है अनुकूल भावोच्छ्वास नहीं संवेदनशीलता है सौन्दर्य-कल्पना नहीं सौन्दर्य भावना है स्वप्न नहीं—स्वप्नाकांक्षा है अज्ञात की जिज्ञासा महा-शान्त का प्रसार है और आदर्श का आरोपण नहीं बल्कि उसका अन्वेषण है। प्रसादजी' अपने युग के सर्वाधिक बोधवान कवि हैं। वस्तुतः 'प्रसाद' का साहित्य भक्ति और आनन्द की समन्वयशील सर्जना तथा मानुषिक विचारणा से ओतप्रोत है। उनका चिंतन एवं दर्शन रसात्मक है, उनके कल्पना–चित्र भावानुरूप हैं और उनकी अनुभूति में अद्भुत रसोद्रेक है। उनका अन्तर्मन संवेदन और सप्रेषण से परिपूर्ण है। उसमें त्रिगुणात्मिका सृष्टि का द्वन्द्व है। कवि का आत्म प्रेमस्वरूप है और उस पर सौंदर्य तथा आनन्द का रंग है। 'प्रसाद' का साहित्य प्रेम–सौंदर्य से युक्त और कल्पनाप्रधान होता हुआ भी वास्तविक जीवन रस से अभिषिक्त है। उनके जीवन में वैराग्य तटस्थता और निर्वेदों का प्राबल्य नहीं है।

'प्रसाद' के साहित्य की अन्तश्चेतना में उपेक्षणीय है—उनकी आनन्द-भावना। जीवन पर्यन्त वे आनन्द के उपासक तथा उद्गायक रहे हैं। यह कवि की अनुभव सिद्ध जीवन साधना का परिणाम है। प्रारम्भ में प्रसाद प्रेम और सौन्दर्य के चितेरे रहे हैं

पर अपने प्रौढ़ कर्तृत्व-काल में उन्होंने इसे एक दार्शनिक अनुबन्ध में सम्पादित कर लिया सौंदर्य के प्रति जिज्ञासा और तीव्र रिझान के कारण उनमें एक अद्भुत रागात्मिका वृत्ति जग गई जो शुद्ध दार्शनिक चिंतन के आधार पर आन्तरिक उल्लास के रूप में प्रकट हुई । जीवन के प्रौढ़ काल में उन्होंने इसे प्रेमानुभूति का रूप दिया । प्रसाद के इस प्रेम सौंदर्य-प्रकरण में जीवन का सरस संगीत है और उस संगीत में अनुरागमय जीवन की मोहक स्मृतियाँ, लोकोत्तर सुख की अभिलाषाएँ और अन्तस्तल की अथाह गहराई है । वस्तुतः उनके कैशोर एवं यौवन काल की प्रेम-सौंदर्य सदा मस्ती की खुमारी न हो दार्शनिक भाव भूमि पर पहुँचकर समरसतामूलक आनन्दवाद को जन्म दिया है ।

'प्रसाद' का प्रेम-सिद्धान्त विश्वबन्धुत्व का हिमायती और मानवतावाद का पर्याय है, जिसमें संघर्षमय पीड़ा है और मंगलमय आत्म प्रसार भी । उस दृष्टिकोण में संकीर्ण व्यक्तिवाद प्रस्फुटित नहीं हो सका है बल्कि उसमें समष्टि के प्रति गहन आत्मीयता की छाया है । सौंदर्य उसका मानदण्ड है, जो स्थूल न होकर भावपूर्ण है । प्रसाद का प्रेम प्राय. कोमल है न कि परुष, इसीलिए उन्होंने नारी सृष्टि को सर्वोत्कृष्ट प्रेम पात्री स्वीकार करके उसके हृदय को 'प्रेम का रंगमंच' कहा है । यहाँ स्त्रैणता नहीं, वरन् प्रबल पौरुष का भाव है । उनकी नारी सौंदर्य प्रेम की पूरक और प्रतीक है । सौंदर्य-प्रेम के आलंबन रूप में कवि ने नारी को रंगीन मधुवेष्ठन डालकर सजाया-सँवारा है । उनके नारी पात्रों में मानव हृदय की गुदगुदी है, मन्मथ की मधुचर्या है, प्रणय का उद्दाम वेग है, तारुण्य का उन्माद है और हृदय का स्पन्दन है । उनके नारी चरित्रों में यौवन-विलास के स्निग्ध चित्र हैं, जहाँ मधु की मिठास है, पर विष की कड़ुवाहट नहीं । प्रसादजी का सौंदर्य प्रेममय है और प्रेम काममय, जो पुरुषार्थ चतुष्टय का अंग है, धर्माविरुद्ध है और उदात्त भी । इसकी परिणति ही आनन्द है । यह काम वस्तुतः 'सर्ग इच्छा का परिणाम' है, जिसमें ज्वार का उफान है पर प्रालेय उत्पात नहीं , तरलता है पर प्लावन नहीं, स्निग्धता है पर विगलन नहीं । उसमें भावावेग है अवश्य, पर मर्यादित सीमा में ही । कवि ने

इस आत्म-प्रकाशन में नैतिकता का बाधक नहीं हैं क्योंकि उसी के साथ विवेक भाव की सन्तुलित संगति भी है। उनकी भावना भिनय्यथी है यद्यपि उनका व्यक्तित्व स्वाधीन है और उसमें कल्पना की रेखाएँ अत्यन्त प्रखर हैं। कवि में विरह मिलन का आह्वान भी है और उभरते हुए यौवन की मादकता भी। उसके प्रणयावेग में वैचारिक परिप्रौढ़ता है। मन एवं प्रेम के पचड़े रोने-धोने कवि करुण अनुभूतियों की निमग्न और 'चिर वंचित भूखों' की करुण दशा के हृदय भी खोलता है। इसी रुदन और वेदना के बीच उसने जीवन के वास्तविक सत्त्व की रक्षा की है तथा मानवता का अभिनन्दन किया है। वस्तुतः प्रसाद ने निर्भय होकर मानवीय प्रेम तथा यौवन के गीत गाए हैं। उन्होंने जग की विषम वेदना के दूरीकरण का कोई उपाय न पाकर अपने प्रिय आनन्दवाद में ऐसी शरण ढूँढ ली है, जो जीवन-साधना का उत्कृष्ट रूप है।

'प्रसाद' जी के आनन्दवाद में दुःख का उच्छेद है और सुख का विवर्द्धन। उस आनन्द में यदि सुखों का समावेश नहीं तो दुःखों की विस्मृति अवश्य है। इसमें निश्चय ही संकुचित चेतना का विस्तार हुआ है और कार्यक्षम, अतिलौकिक जीवन से समझौता भी।

'प्रसाद' का कवि आद्योपदेशिक है। उसमें सुकुमार भाव-विवृत्ति है। उसकी विचारधारा अनेकांगी है, जिसमें भावुकता की रंगीनी के साथ भावभूमियों का पट-परिवर्तन होता रहता है। वे जीवन की सर्वोच्च सिद्धि का मूल मंत्र मानते हैं—समरसता के सिद्धान्त को। इसे उन्होंने अपनी वैचारिक प्रौढ़ता से जीवन की कमनीय मधुरिमा से, भावात्मक वृत्तियों की सरसर्य विधायिनी प्रज्ञा से तथा भावुक हृदय की संवेदना से उद्बुद्ध किया है। उनके अखण्ड आनन्दवाद की साधना में अद्वैतवाद की स्थापना है। इसके द्वारा उन्होंने शिवत्व की प्रतिष्ठा की है। उनके काव्यों में भावोन्मेष का विकास है। यही उनका ऐकान्तिक सत्य है। उन्होंने अपनी रचना प्रक्रिया के आधार पर भावानुकूल वातावरण की सृष्टि की है।

प्रेम-साधना से आनन्दवादी साधना की यात्रा-प्रक्रिया में कवि 'प्रसाद' अनेक

भूमियों से गुजरते हैं। अपने कवि-जीवन के प्रारम्भ में वे रस-रंग के चितेरे, रूपोन्माद के संयोगत, विलास और मस्ती में झूमने वाले रोमैण्टिक कवि रहे हैं। यद्यपि उनका यह माधुर्यभाव रीतिकालीन काव्य जैसा स्थूल, ऐन्द्रिय और मांसल नहीं है, फिर भी उसमें किसी प्रगाढ़ दर्शन की सुस्पष्ट रूपरेखा भी नहीं है। 'आँसू' के प्रकाशन तक 'प्रसादजी' की आँखों में प्रेम की प्रमत्तता है। उसी के द्वितीय संस्करण में कवि ने अध्यात्म आध्यात्मिकता का आरोपण किया है जिससे लौकिकता में एक हल्का सा आध्यात्मिक आवरण आ गया है। पहले कविमें व्यक्ति के प्रति प्रबल आकांक्षा थी, परन्तु इस मानवीय स्तर पर पहुँचकर वह निर्वैयक्तिक हो गया और निरन्तर उसमें भावों का ऊर्ध्वीकरण होता रहा। इस प्रेम-रहस्य में कवि ने विश्वबन्धुत्व तथा सार्वजनिक प्रेम को और भी निखारा है। उसने पारलौकिक अवसाद और वैराग्यमूलक क्षणवाद के प्रतिकूल विश्वात्मा को आनन्द के रूप में देखा और द्वन्द्वात्मक जीवन से समझौता करके समरसतामूलक आनन्दवाद की स्थापना की।

'प्रसाद' के वैयक्तिक जीवन के विरल मधुर क्षण कभी फूल के समान खिल-खिलाकर हँसते हैं और कभी मुरझाकर मकरन्द से चू पड़ते हैं, लेकिन फिर भी अपना सौरभ छोड़ जाते हैं, इसीलिये उनके साहित्य में 'सत्य, शिव और सुन्दरम्' का समाहार है। प्रसाद साहित्य में जहाँ प्रेम-सौंदर्य और आनन्द की झांकी है, वहीं सांस्कृतिक उत्कर्ष, पुनरुत्थान का संकल्प और सामाजिक विडम्बना का स्वर है। उनका वस्तु-विधान भले ही शिथिल हो, परन्तु उसमें सत्यान्वेषी अन्तर्दृष्टि है। इस विह्वलता में स्थिरता है और इस आवेग में विवेक है। उनकी आत्म-दुर्बलता में दृढ़ता है और संदेह में विश्वास। उनका प्रणय-व्यापार अज्ञात को ज्ञात रूप में लाकर स्वप्निल मिलन का संयोजन करता है, अतः यहाँ अमूर्तता, सम्मूर्तन बिम्बग्रहण और कल्पनाजनित सम्वेदना की भरमार है। अपने साहित्य में अनेक परिस्थितियों को अवतारणा करके कलात्मक गरिमा के साथ सांस्कृतिक निष्ठा और आत्मानुभूति के बल से उन्होंने नयी सभ्यता का यथावत् रूप प्रस्तुत किया है और अन्त में ज्ञान-कर्म-भाव का समन्वय करके निर्णयात्मक समाधान खोज निकाला है। बीच-बीच में कवि पलायनोन्मुख भी

हो उठा है। 'प्रसाद' प्रारम्भ में अन्तर्मुखी रहे हैं। जीवन के संघर्षों से, भौतिक चहल-पहल से और अतिवादी यांत्रिक शासन से ऊबकर वे 'कोलाहल की अवनी' को तजकर निर्जन निसर्ग की ओर आना चाहते हैं। यहाँ कर्त्तव्य की उपेक्षा नहीं है। प्रसादजी पलायनवादी नहीं, केवल संघर्ष से उपरत हैं। यह उनकी अनुभव-सिद्ध जीवन साधना का निष्कर्ष है, अथवा इसे कतिपय दार्शों का अपवाद कहा जा सकता है। वस्तुत: 'प्रसाद' के साहित्य को हम उपयोगितावादी तुला पर नहीं तोल सकते। उसमें जीवन की बहुरूपता है। उनके पलायन में अगाध जीवन-विस्तार की स्वीकृति है। उनके कृतित्व में आत्मनिष्ठा और सौंदर्य-आनन्द की स्वायत्त उद्बुद्धि है। उनकी यही अन्तर्वर्ती भावना प्रेम-प्रेय पूर्ण दर्शन का रूप धारण करती है। स्पष्ट है कि 'प्रसाद' के चरम दर्शन में भविष्य की मंगलाशा है। अस्तु प्रकट है कि प्रसाद के व्यक्तित्व और साहित्य में अनेकरूपता है। यह निर्विवाद तथ्य है कि 'हिन्दी साहित्य के डेढ़ हजार वर्षों के इतिहास में 'प्रसाद' जैसा बहुरंगी कलाकार और नहीं है।"



प्रसाद की प्रेम-भावना

।। प्रेमः तात्विक विश्लेषण ।।

मानव हृदय की प्रधान वृत्तियां हैं–जिज्ञासा और चिकीर्षा । जीवन में इनका रूपान्तरण ज्ञान कर्म और भाव रूप में होता है । वस्तुतः यह भाव-जगत अपनी ही कहानी है । आन्तरिक उल्लास के परिणामस्वरूप यही आनन्दरूप बन जाता है और तभी प्रेम–आकांक्षा उत्पन्न होती है । भारतीय संस्कृति में ब्रह्म की कल्पना 'सत्यं, शिव सुन्दरम्' रूप में की गई है । कर्मक्षेत्र में वह शिव है, ज्ञान रूप में वह सत्य है और भाव रूप में वह सुन्दर है । यही विश्व-आत्मा का सत् चित् आनन्द स्वरूप है । सौन्दर्य जीवन-साधना का उपकरण है, प्रेम पाथेय है और आनन्द उसका साध्य है । इस त्रिकोण को जीवन–सर्वस्व कहा जा सकता है ।

प्रेम वस्तुतः प्राणि-मात्र के आन्तरिक प्रकर्ष तथा उसकी अन्तरस्फुर्ति का स्पन्दन है । शास्त्रीय विवेचन के अनुसार प्रेम हृदय की एक रागात्मिका वृत्ति है । शाब्दिक और व्युत्पत्ति की दृष्टि से यह एक प्रियकर भाव है । ❀ इसे मन वाणी से परे एक अनिर्वच तत्त्व माना गया है—"अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम् ।

मूकास्वादनवत् ।" (नारदीय भक्ति सूत्र)

नारदीय भक्ति सूत्र में प्रेम की एकरसता तथा अनुभवगम्यता का विस्तृत उल्लेख किया

❀ 'प्रियस्य भाव. इमनिचप्रत्यय प्रादेश."

प्र + इमन् अथवा–प्री (प्रसन्न करना) मनिन् (मन)

० प्रीञ प्रीतौ ।

• "सौहार्दं स्नेहे हर्षे" (वाचस्पत्य कोष, पृष्ठ ४४५०)

▪ "प्रेमा ना प्रियता हार्दं प्रेम स्नेहो अथ दोहादम्" (अमरकोष)

गया है–' गुण रहित कामना रहित प्रतिक्षण वर्द्धमानमविच्छिन्न सूक्ष्मतरमनुभवरूपम् । वस्तुत –"प्रेम आश्रय के हृदय की एक गूढ़ भावना है। आन्तरिक अनुभूति होने पर भी इसके आस्वाद का वर्णन नहीं किया जा सकता। प्रेमोपासना प्रणाली में उस मसारण उद्भूत और एक रस अनुराग को प्रेम कहा गया है, जिसमें सर्वरस तथा सर्वभाव विद्यमान हैं—

' सर्वे रसाश्च भावाश्च तरगाइव वारिधौ ।

उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति यत्र स प्रेम सज्ञक ।'

इस विचार क्रम म प्रेम को परमात्मा का स्वरूप स्वीकार किया गया है। श स्त्रानुसार सद् प्रेम, अहम् का लोप करके कल्याणकृत को समरस करता है। यह एक दैवी अनुभूति है। उपासना माग म प्रेम को जीवन का भावात्मक आधार स्वीकार किया गया है। चैत य महाप्रभु के अनुसार—

"प्रेमा पुमार्थो महान् ।

वस्तुत श्रममूलक जीवन की व्यस्तता से पराभूत और शुष्क चर्याओं से ऊबे हुए हृदय का प्रेम ही विश्रान्ति-स्थल है, अतएव भवभूति ने इसे गुणातीत घोषित किया है--

'अद्वैत सुख दु खयोरनुगुण सर्वास्ववस्थासु यद्,

विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रस । ।

कालेनावरणात्ययात् परिणते यत्स्नेह सारे स्थित

भद्र प्रेम सुमानुषस्य कथमप्येक हि तत्प्राप्यते ।।"

प्रेम में जो मधुमयी वेदना उठती है, वही परमानुराग की स्थिति है। भक्ति मार्ग में यह प्रेम-विरह सर्वोपरि है –

"सम्यङ् मसृणित स्वान्तो ममत्वातिशयांकित ।

भाव स एव सान्द्रात्मा बुधै प्रेमा निगद्यते ।" (हरिभक्ति रसामृत सिन्धु-११२)

वस्तुत समष्टि के प्रेम मे व्यष्टि का प्रेम अन्तर्भूत रहता है, अत ब्रह्म को प्रेममय और प्रेम को ब्रह्ममय माना गया है। साहित्यकारों के मतानुसार प्रेम में अन्त करण को द्रवीभूत करने की क्षमता होती है। एक प्रचलित उक्ति है—

"दर्शने स्पर्शने वापि श्रवणे भाषणेऽपिवा ।
यत्र द्रवत्यन्तरंग स स्नेह इति कथ्यते ॥"

यह प्रेम देहात्मबोध का नाशक, महत्ता का हन्ता तथा आत्मा का उद्बोधक कहा गया है। मध्ययुगीन हिन्दी कवियों ने इसे कई रूपों में ग्रहण किया है। कुछ सगुण कवियों ने इसे मधुरा (रागानुगा) भक्ति के रूप मे स्वीकार किया है, कुछ निर्गुण कवियों, सन्तों, सूफियों आदि ने इसे नूर, परमतत्त्व या खुदा रूप में पर्यवसित कर लिया है। निष्कर्ष यह है कि प्रेम बड़ा रहस्यपूर्ण है। वह अनुभवगम्य है, कथनीय नहीं।

वस्तुत यह हृदय की एक मौलिक क्षुधा है और यही विश्व का इतिमय जीवन है। इस प्रेम की अनुभूति कवि जीवन की परम प्राप्ति है। आधुनिक मनोवैत्ताओं ने प्रेम का उद्भव काम से माना है। फ्रायड, युंग आदि मनोवेत्ता प्रेम को यौन भावना का उदात्त रूप मानते हैं, किन्तु उसे ऐन्द्रिय भावों से नितान्त पृथक् नहीं स्वीकार करते। सामान्यतः इन्होंने भी प्रेम को जीवन की रागात्मक चेतना रूप में स्थापित किया है।

प्रसाद की प्रेमविषयक अवधारणा:—

'प्रसादजी की प्रेम सम्बन्धी परिकल्पना बड़ी उदार है। उनके साहित्य का अधिकांश प्रेम-रहस्यों में केन्द्रित है। "तितली" में वे स्पष्ट कहते हैं—"मानव-हृदय की मौलिक भावना है स्नेह।" कभी-कभी स्वार्थ की ठोकर से पशुत्व के विरोध की प्रधानता हो जाती है।......प्रेम मित्रता की भूखी मानवता बार-बार अपने को ठगाकर भी वह उसी के लिये भगड़ती है, भगड़ती है इसीलिये प्रेम करती है (तितली-२१)। उनका एक दृढ़ प्रश्न है कि—"दो दिन के जीवन में मनुष्य मनुष्य को यदि नहीं पूछता, स्नेह नहीं करता तो फिर वह किस लिये उत्पन्न हुआ है। (जनमेजय का नागयज्ञ-११) प्रसाद का प्रेम-पन्थ वर्णधर्म से परे है। लेखक के शब्दों में 'मनुष्यता का एक पक्ष वह भी है, जहाँ वर्ण धर्म और देश को भूलकर मनुष्य मनुष्य के लिये प्यार करता है। प्रेम ऐसी तुच्छ वस्तु नहीं है कि धर्म को हटा उसके स्थान पर भा

बैठे। प्रेम महान है-प्रेम उदार है, प्रेमियों को भी वह उदार और महान बनाता है। प्रेम का मुख्य अर्थ है आत्म-त्याग''। (इन्द्रजाल-१२०)

प्रसाद का प्रेम-दर्शन 'प्रेम-पथिक' में विश्व प्रेम बनकर प्रकट हुआ है। उनका सकल्प है-"इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवन में टिक रहना। किन्तु पहुँचना उस सीमा तक जिसके आगे राह नहीं।"

×"प्रेम पवित्र पदार्थ न उसमें कहीं कपट की छाया हो।"

×.. 'प्रेम-यज्ञ में स्वार्थ और कामना हवन करना होगा।" आदि।

प्रसाद के अनुसार-'मानव के अन्तरतम में कल्याण के देवता का निवास है। उसकी इच्छा है सारी सृष्टि एक प्रेम की धारा में बहे और अनन्त जीवन लाभ करे।" अस्तु इस परिप्रेक्ष्य में उनका प्रेमादर्श परीक्षणीय है।

प्रसाद का प्रेम आनन्द का मूल तत्व और शक्ति का प्रायः स्फुरण है। वस्तुतः वैयक्तिक जीवन के संघर्ष का परिणाम है सत्य। शक्ति और संघर्ष के द्वन्द्व का समाहार है विश्व और विश्व-चेतना के रहस्यमय किन्तु चिरस्थायी अन्तः स्रोत का नाम है सौन्दर्य। सौन्दर्य के माधुर्य-पक्ष का कलात्मक प्रचलन है शृंगार। शृंगार का स्थायी भाव है रति और रति की भावपरक अहैतुकी रागात्मिका वृत्ति है प्रेम। प्रेम भाव का उदात्तीकरण करके समष्टि में उसकी मंगलमयी परिणति है—काम। यही ऐन्द्रिय लोलुपताओं से उपरत होकर, अपना अस्तित्व को भूलकर विश्वचेतना महाशून्य की निस्वन क्रोड में चिरकालिक विश्रान्ति पाती है। इस जीवन साधना की उत्कृष्ट परिणति है-आनन्द, जो प्रसादजी का चरम साध्य है। वस्तुत इन सीमाओं का स्पर्श करता हुआ प्रसाद का साहित्य निरन्तर गतिशील रहा है।

प्रसाद का प्रेमपरक दृष्टिकोण रहस्यमय होकर भी पूर्णतः स्पष्ट है। वह अत्यन्त गूढ़ दार्शनिक अनुबन्धों में उलझा हुआ होकर भी पर्याप्त सुलझा हुआ है। प्रसादजी के अनुसार प्रेम अन्तर्तम की एक अनूरयात्मक अनुभूति है। विश्व के विस्तृत कारागार में जीवन के विश्राम के लिए किसी शीतल छाया की आवश्यकता होती है। जीवन में अनेक ऐसे क्षण आते हैं, जब अन्तर्तम की रसात्मक अनुभूतियाँ जग जाती हैं।

उस समुज्ज्वल आलोक मे हृदय हृदय के समीप आता है और अन्तर्भूत कामनाएँ मुखर हो जाती हैं, यही प्रेम है ।

इस प्रेम-भावना की निष्पत्ति आकस्मिक न होकर स्वाभाविक विकासक्रम के परिणामस्वरूप होती है । रसानुभूति की प्रक्रिया की भाँति प्रेमोदय का भी एक विकास क्रम है । प्रणय की यह प्रक्रिया (प्रणयानुभूति) एक अवश्यभावी भाव है । प्रत्येक सचेतन प्राणी मे एक बार वह ऋतु आती है—"जब हृदय-हृदय को पहचानने का प्रयत्न करता है ।" इस ऋतु में सभी अवयव चित्ताकर्षक हो उठते हैं । एक सहज सौन्दर्य रग-रग मे व्याप्त हो जाता है । यौवन के थपेड़ों से भोले-भाले मनोभाव दूर हो जाते है और अनेक भावभंगिमाएँ तथा उत्तेजक हाव-भाव स्वतः विकसित हो जाते हैं अन्तर्भूत ग्रन्थियाँ विक्षुब्ध और चपल हो उठती हैं । इस सौन्दर्य के प्रति मन म लालसाएँ जग जाती हैं । मानस के अन्दर शृंगारिक चेष्टायें होने लगती है और वे ही प्रेम पूर्ण अनुभावों द्वारा प्रकट होने लगती हैं फलतः उसकी प्रेम-पिपासा बलवती हो उठती है । उसकी अन्तरात्मा अपनी पूर्ति के लिए छटपटाने लगती है । इस स्थिति मे मन एकोन्मुख और इन्द्रियाँ आत्मनिष्ठ हो जाती हैं । हृदय का स्पन्दन तीव्र हो उठता है । आँखों मे 'किसी छलिया का अनूप रूप' छा जाता है । ऐंद्रिय जगत के वैद्युत चक्करों से वे मनोवृत्तियाँ कभी-कभी वासना के रूप में भी गतिमान हो उठती है, जिनसे व्याधि, जड़ता, मूर्च्छना, उन्माद, प्रलाप, गुणकथन, स्मरण आदि विरह-दशाएँ उत्पन्न होती है । सयोगावस्था में प्रकम्प, रोमाच, प्रस्वेद आदि अनुभाव प्रकट होत हैं । आलम्बन के विभाव इसे और उत्तेजित करते हैं । इस प्रणय-व्यापार मे अनेक सचारी-व्यभिचारी भाव भी सक्रिय हो जाते हैं जो स्थायी भाव (रत) को उद्दीप्त करते है ।

प्रसाद के अनुसार प्रेमानुभूति एक नैसर्गिक अनुभूति है । न जाने क्यों और कैसे जीवन में मधुर वसन्त घुम आता है । फलत शरीर की क्यारियाँ हरी-भरी हो उठती है, भाव प कुरित हो उठते हैं, प्रेम का प्रसुन मग जाता है और आँसू भरी स्मृतियाँ मकरन्द सी टपकने लगती हैं । अतिबौद्धिक जीवन में भी कभी न कभी इस प्रणय भाव

का प्रवेश होता है और फिर अनायास ही 'बालुकापूर्ण शुष्क कगारों के बीच से एक निर्मल स्रोतस्विनी प्रवाहित' हो उठती है।

प्रसाद के पात्रों में प्रेमोदय प्रायः प्रथम दर्शन अथवा आकस्मिक संयोग से होता है। आश्रय और आलम्बन एक दूसरे को देखकर ही कुछ से कुछ हो जाते हैं। उनके हृदय का संचित प्यार अपना सहज विस्फोट चाहता है। जीवन के प्रशान्त क्षणों में तो उनकी कामनाएँ नीरव रहती हैं, परन्तु उदात्त और महत् के प्रति वे मुखर हो जाती हैं।

प्रसादजी ने प्रेम की प्रक्रिया में कतिपय शृंगारिक संकेतों, उत्तेजक भाव भंगिमाओं, आंगिक चेष्टाओं तथा मुद्राओं का उल्लेख भी किया है। एक स्थल पर उनकी प्रिय पात्री देवसेना अपनी विक्षिप्तावस्था में नारी-आचरण का रहस्य उद्घाटित करती हुई विजया को प्रेम करने का, सुपुरुष को वशीभूत करने का या मनुष्य फँसाने का 'फार्मूला' बताती है—

'नए ढंग के आभूषण, सुन्दर वसन, भरा हुआ यौवन—यह सब तो चाहिए ही, परन्तु एक वस्तु और चाहिए। पुरुष को वशीभूत करने के पहले चाहिए—धोखे की टट्टी। मेरा तात्पर्य है—एक वेदना अनुभव करने का, एक विह्वलता का अभिनय उसके मुख पर रहे—जिससे कुछ आड़ी-तिरछी रेखायें मुख पर पड़ें और मूर्ख मनुष्य उन्हीं को लेने के लिए व्याकुल हो जाय। और फिर दो बूँद गरम-गरम आँसू और इसके बाद एक तान बागेश्वरी की—करुण कोमल तान! बिना इसके सब रंग फीका है।"
(स्कन्दगुप्त-५४)

अन्यत्र भी प्रसाद ने अपने पात्रों के प्रेमानुभावों का वर्णन किया है,। उन्होंने अपने वैयक्तिक जीवन की भी कुछ घटनाओं का उल्लेख किया है जैसे—

"भर गई प्लावित तनमन सारा, एक दिन तब अपांग की धारा।" (झरना-१६)

'स्कन्दगुप्त' में मद्यप शर्वनाग नारी की भीषण कमनीयता से हतबुद्धि होकर अपनी वासनाजनित विवशता बताता हुआ इसी मत को दुहराता है—"सुन्दरी! यह तुम्हारा ही दोष है। तुम लोगों का वेश-विन्यास, आँखों की लुकाचोरी अंगों का

सिमटाना, चलने में एक क्रीड़ा, एक कौतूहल–पुकारकर, टोककर कहते हैं–'हमें देखो। हम क्या करें देखते ही बनता है।'' (स्कन्दगुप्त–६२)

प्रसाद के अनुसार यह विवशता एक मानवीय स्वाभाविकता है। मधुबन की बाल सहचरी तितली अपनी वयः सन्धि में इतनी आकर्षक हो गई है कि उसे देखकर हृदय रस स्निग्ध हो ही जाता है–

''उसकी काली रजनी सी उनींदी आँखें जैसे सदैव कोई गम्भीर स्वप्न देखती रहती हैं। लम्बा छरहरा अंग सोने सी पतली उंगलियाँ, सहज उन्नत ललाट, कुछ खिंची हुई भौहें और छोटा सा पतले-पतले अधरों वाला मुख.. । (तितली–८६)

प्रसाद के अनुसार कभी-कभी व्यक्ति सौन्दर्य के इन स्थूल उत्तेजक उपकरणों के कारण प्रमत्त हो जाता है। उदाहरणार्थ---'कामना' के विदेशी इन्द्रजाली युवक विलास को ले सकते हैं। लेखक के शब्दों में 'उसकी तीक्ष्ण आँखों में कौशल की लहर उठती है। मुस्कुराहट में शीतल ज्वाला और बातों में प्रेम की बढ़िया।'' यहाँ ऐन्द्रिय आकर्षण का समर्थ प्रमाण प्रस्तुत किया गया है। इसके विपरीत कहीं-कहीं पवित्र अन्तः स्फूर्ति और सात्विकता भी दिखाई देती है। जैसे प्रसाद की तितली का नैसर्गिक रूप, जो बड़ा सात्विक है, जिसमें उत्तेजना नहीं, सान्त्वना है।

प्रसादजी प्रेमानुभूति की प्रक्रिया में सतत विकासोन्मुख रहे हैं। वे निरन्तर व्यष्टि से समष्टि की ओर अग्रसर हैं। प्रारम्भिक कृतियों में वे जहाँ मानवीय प्रेम की प्राण–प्रतिष्ठा करते हैं, वहाँ प्रौढ़ कृतित्व में उसे अपने परम प्रतिपाद्य (काम और आनन्द) के रूप में घटित कर देते हैं। उनकी यही घोषणा रही है कि–''प्रेम का प्रचार करके, परस्पर प्यार करके दुःखमय विचारों को दूर भगाइए।'' इस स्थिति में पहुँचकर उन्होंने स्वच्छन्द प्रेम को जीवन का परम पुरुषार्थ घोषित किया है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रसाद-साहित्य में प्रेम की प्रक्रिया का आनुषंगिक स्वरूप दृष्टिगत होता है। वे प्रणय–व्यापार में पूर्वराग अर्थात् चित्रदर्शन, गुण–श्रवण आदि को महत्त्व नहीं देते, पर इसके पीछे कोई न कोई पूर्वजन्म अथवा जन्मजन्मांतर की प्रेरणा अवश्य स्वीकार करते हैं। प्रसाद के मनु और श्रद्धा का युग्म

युगीन प्रेम इस तथ्य का प्रमाण है। प्रसादजी ने प्रेम के अधिकारी पात्रों को प्रथम दृष्टि में ही प्रेमानुरक्त कर दिया है। ये प्रणयी संयोग-वियोग की स्थितियों को पार करते हुए या तो परिणय-सूत्र में बँध जाते हैं, या मनः वैराग्य धारण करके एक दूसरे के जीवन से हट जाते हैं। इस स्थिति में भी वे परस्पर (मनसा) प्रेमपूर्ण बने रहते हैं। इस प्रेम-साधना को धीरे-धीरे प्रसादजी काम तथा आनन्द के रूप में परिणत कर देते हैं। वस्तुत. प्रसाद का प्रेम भौतिक स्तर से आध्यात्मिक स्तर तक व्यष्टि और समष्टि के सभी छोरों को छूता दिखाई देता है।



प्रसाद-साहित्य में प्रेम के विविध रूप

॥ व्यष्टिगत प्रेम ॥

प्रसाद की प्रेम-भावना का विकास व्यष्टि और समष्टि की सन्धिरेखा पर हुआ है। ये दोनों उनकी विकास यात्रा के सीमान्त चिन्ह हैं। एक इसका आदि है, दूसरा अन्त। अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भकाल मे, उनमे व्यक्ति के प्रति मोह और 'ममत्व' का आग्रह रहा है, किन्तु अपनी प्रौढ़ावस्था मे उन्होंने उसे विश्वमूलक मानवतावाद के रूप मे परिणत कर लिया है।

प्रसाद-साहित्य मे व्यष्टिगत प्रेम के मुख्यत तीन पहलू हैं।

१. नारी प्रेम, २. पुरुष प्रेम, ३. प्रेमी पुरुष।

१ नारी प्रेम —प्रसाद के साहित्य में नारी की सृष्टि बड़े मनोयोग के साथ हुई है। उनके नारी पात्रों का हृदय मानव-प्रकृति की मृदु तथा उदात्त, सारी भावनाओं का मूल अधिकरण है। यही अन्तर का उच्चतम विकास है। उनके अनुसार नारी जीवन का सत्य है—निरीह आत्मसमर्पण। प्रसाद की नारी उस लता के समान है, जो अपने निकटतम वृक्ष का अवलम्बन लेकर चढ़ती है, उसे अपना सर्वस्व सौंप देती है और हर परिस्थिति मे उसी से आबद्ध रही है। यह नारी पुरुष के अपूर्ण जीवन की पूर्ति है। वह पुरुष मे अपने अस्तित्व का तिरोभाव करके उसे पूर्ण बनाती है। प्रसादजी की नारी श्रद्धास्वरूपा है। निश्चय ही उनकी नारी-भावना बड़ी उदात्त और उदार है।

नारी-प्रेम के सम्यक् निरूपण हेतु प्रसादजी ने नर-नारी का प्रकृतिभेद निरूपित करके नारी जीवन का रागात्मक माहात्म्य प्रकट किया है। उनका एक पात्र दीर्घकारायण पुरुषोचित तथा स्त्री सुलभ कर्मों का तुलनात्मक विवेचन करता हुआ कहता है...."मनुष्य कठोर परिश्रम करके, जीवन संग्राम में प्रकृति पर यथाशक्ति

अधिकार करके भी एक शासन चाहता है, जो उसके जीवन का परम ध्येय है। उसका एक शीतल विश्राम है और वह, स्नेह–सेवा–करुणा की मूर्ति तथा सान्त्वना के अभय-वरदहस्त की आश्रय, मानव-समाज की सारी वृत्तियों की कुंजी, विश्व शासन की एकमात्र अधिकारिणी प्रकृति स्वरूपा स्त्रियों के सदाचारपूर्ण स्नेह का शासन ...है तुम्हारे ,राज्य की सीमा विस्तृत है और पुरुष की संकीर्ण। कठोरता का उदाहरण है पुरुष और कोमलता का विश्लेषण है स्त्री जाति। पुरुष क्रूरता है तो स्त्री करुणा है जो अन्तरतम का उच्चतम विकास है। इसीलिए प्रकृति ने उसे इतना सुन्दर और मनमोहक आवरण दिया है–रमणी का रूप।" (अजातशत्रु-१२५)

नारी हृदय में निसर्ग से ही करुणा और स्नेह का अनन्त स्रोत प्रवाहित होता रहता है। वह प्रकृति की सबसे कोमल सृष्टि है। पुरुषत्व का स्वांग करने पर यही नारी कुलटा हो जाती है। प्रेमचन्दजी ने भी इसकी पुष्टि की है—"यदि नारी के गुण पुरुष मे आ जाते हैं तो वह देवता बन जाता है, परन्तु यदि पुरुष के गुण नारी में आते हैं तो वह कुलटा हो जाती है।" वस्तुतः नारी–हृदय में दैवी और दानवी प्रवृत्तियों का द्वन्द्व चला करता है, किन्तु तो भी प्रसाद की नारी स्नेह और शील की प्रतीक बनी हुई है। देवी मल्लिका ने आदर्श नारी के लिए जो कर्त्तव्य निर्दिष्ट किए हैं, उनके पीछे प्रसादजी की भी अन्तर्ध्वनि है—

'स्त्रियों का कर्त्तव्य है कि पाशव वृत्ति वाले क्रूर कर्मा पुरुषों को कोमल और करुणा-प्लुत करें। कठोर पौरुष के अनन्तर उन्हें जिस शिक्षा की आवश्यकता है–उस स्नेह, शीतलता, सहनशीलता और सदाचार का पाठ उन्हें स्त्रियों से ही सीखना होगा।" (अजातशत्रु-१२७)

प्रसादजी के अनुसार स्त्री और पुरुष ही जग-जीवन के हेतु हैं—'समय पुरुष और स्त्री की गेंद लेकर दोनों हाथ से खेलता है। पुल्लिंग और स्त्रीलिंग की समष्टि अभिव्यक्ति की कुंजी है। पुरुष उछाल दिया जाता है, उत्क्षेपण होता है–स्त्री आकर्षण करती है––यही जड़ प्रकृति का चेतन रहस्य है।" (स्कन्दगुप्त–२६) प्रसाद ने नारी-

सृष्टि को इसीलिए एक रहस्यमय पहेली कहा है, धातुसेन इसकी मीमांसा करता हुआ कहता है. .. ...

"पुरुष है कुतूहल और प्रश्न और स्त्री है विश्लेषण, उत्तर और सब बातों का समाधान। पुरुष के प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देने के लिए वह प्रस्तुत है। उसके कुतूहल उसके अभावों को परिपूर्ण करने का उष्ण प्रयत्न और शीतल उपचार। अभागा मनुष्य सन्तुष्ट है –बच्चों के समान। पुरुष ने कहा 'क' स्त्री ने अर्थ लगा लिया –'कौआ'" बस वह रटने लगा।' (स्कन्दगुप्त-२६) इन दोनों जीवन प्रकृतियों में सन्देह और आस्था का द्वन्द्व चला करता है। संशयात्मा पुरुष हर प्रकार से श्रद्धास्वरूपा नारी पर निर्भर है।' कामायनी' में मनु के विकल श्रद्धा द्वारा ही शांत हो पाते हैं। वह उसे त्रिपुररहस्य और आनन्द–लोक का परिचय कराती हुई महाचिति की विराट लीला दिखलाती है और इस प्रकार 'आनन्द पथिक' मनु को अपने विश्वास का अवलम्ब देकर चरम लक्ष्य पर पहुँचा देती है, (कामायनी-२६०) फलतः मनु अपनी पथप्रदर्शिका एवं प्रणयिनी श्रद्धा को मातृमूर्ति तथा 'विश्वमित्र' स्वीकार करते हैं। प्रसाद-साहित्य में चित्रित नारी जीवन का यह औदात्य भारतीय संस्कृति का संवाहक है। उनके अनुसार पुरुष सत्व का भूखा है, किन्तु नारी समर्पण की। पुरुष में जिगीषा है नारी में उत्सर्ग। प्रसाद की नारी 'आँसू के भीगे अंचल पर मन का सब कुछ' रखकर निश्शेष हो जाती है, क्योंकि उसमें 'सर्वस्व-समर्पण करने का विश्वास' है और अपने निस्सबल अस्तित्व के प्रति माया तथा ममता भी। वह जीवन के समतल में सदैव पीयूष स्रोत सी बहती रही है, क्योंकि वह प्रदान जानती है, आदान नहीं—

'इस अर्पण में कुछ और नहीं केवल उत्सर्ग छलकता है।

मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ इतना ही सरल झलकता है।' (कामायनी–१०५)

यह आत्मविसर्जन प्रेमोन्माद की संज्ञा शून्यता नहीं है, बल्कि आत्मा की अमर ज्योति है, जिससे हृदय विकसित, चेतना उद्बुद्ध, मन ऊर्ध्वोन्मुख और अंतरात्मा तदाकार हो जाती है। नारी जीवन के अपर पक्ष में दुर्बलता भी है। प्रसाद के मतानुसार

"एक दुर्भेद्य नारी हृदय में विश्व प्रहेलिका का रहस्य बीज है।" फिर भी प्रसाद की अधिकांश नारी पात्रियां दयामयी हैं। देवी वासवी की यह उक्ति प्रसादजी के विचारों की व्यञ्जक है—'नारी का हृदय कोमलता का पालना है, दया का उद्गम है, शीतलता की छाया है और अनन्य भक्ति का आदर्श है।" (अजातशत्रु-१०२) वस्तुत मानवी सृष्टि करुणा के लिए है—क्रूरता के लिए नहीं। नारी का हृदय इसी करुणा दया, माया ममता और मधुरिमा का अगाध विश्वास संजोये हुए सदव सहज स्वच्छन्द भाव से खुला रहता है। प्रसाद के नारीपात्र शासन नहीं प्रेम के प्रत्याशी हैं। प्रसाद ने उन्हें शासनाधिकार से निलिप्त रखा है। वे अधिकार और अधिकारी म समरसता का सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। उनके शब्दों मे—"स्त्रियों के संगठन में, उसके शारीरिक और प्राकृतिक विकास में ही एक परिवर्तन है—जो स्पष्ट बतलाता है कि वे शासन कर सकती हैं, किन्तु अपने हृदय पर। वे अधिकार जमा सकती हैं—उन मनुष्यों पर, जिन्होंने समस्त विश्व पर अधिकार किया हो।" (स्कन्दगुप्त-१२४)

प्रसाद की नारी निस्सबल होकर भी जीवन का सबल है। वह कृति शक्ति की सच्ची सफलता है। लेखक ने उसे मानवी सृष्टि म सर्जन-शक्ति की प्रतीक और मोहममता की प्रतिमा माना है। वह रमणी होकर भी शक्तिस्वरूपा है। प्रसाद के मतानुसार—"रमणी का अनुराग कोमल होने पर भी बड़ा दृढ़ होता है, वह सहज, मे छिन्न नहीं होता। जब वह एक बार किसी पर मरती है, तब उसी के पीछे मिटती है।" (जनमेजय का नागयज्ञ-६६)
पुरुष अपनी जीवन-लिप्सा के कारण कभी-कभी नारीत्व की गरिमा पर ध्यान नहीं देता। जब नारी के हृदय मे निरन्तर हाहाकार उठता है, अपढ़पुरुष उसे जान नहीं पाता। कंकाल की गाला मगल से कहती है "स्त्री का हृदय प्रेम का रंगमंच है पद्मिनी के समान जल मरना स्त्रियां ही जानती हैं और पुरुष केवल उसी जली हुई राख को उठाकर अलाउद्दीन के सदृश बिखेर देना ही तो जानते हैं।" (कंकाल-२४६)

नारी-जीवन में अल्हाद और विषाद का अद्भुत सम्मिश्रण है। वह कितनी

निरीह, कितनी सरलहृदया और कितनी भाव सरल है, इसे दुर्वृत्त पुरुष नहीं जान पाते, इसीलिए प्रायः प्रीति और प्रतीति के स्थान पर विषमता और विडम्बना आ जाती है। प्रसादजी का स्पष्ट मत है कि पुरुषों के प्रति स्त्रियों का हृदय प्रायः विषम और प्रतिकूल रहता है। जब लोग कहते हैं कि वे एक आंख से रोती है और दूसरी से हसती है तब वे कोई भूल नहीं करते।" (तितली–१४१) प्रसादजी के नारी पात्रों की प्रमुख विशेषता है निरीहता। वह सहज समर्पिता है। एक समर्पणशीला स्त्री को जिन वस्तुओं की आवश्यकता है, वह घण्टी के इस कथन से स्पष्ट है—

"मुझे जो करना है वह करती हूँ, करूँगी भी। घूमोगे-घूमूँगी, पिलाओगे–पीऊँगी। दुलार करोगे हँस लूँगी–ठुकराओगे–रो दूँगी। स्त्री को इन सभी वस्तुओं की आवश्यकता है।" (कंकाल–१७७)

नारी–हृदय सुकुमार भावनाओं की पीठिका और विश्व की रंगभूमि है। उसके हृदय में प्रेम, सरलता और स्निग्धता का कोमल स्पर्श होता रहता है। वह 'वज्रादपि कठोर और कुसुमादपिकोमल' है। प्रसाद की आदर्श नारी "स्नेह से पिच्छिल, जल से अधिक तरल अवश्य है, पर कभी–कभी सांसारिक व्याघात उसे कर्त्तव्य–कठोर भी बना देते हैं।" उनके अनुसार यद्यपि....'स्त्रियों का मूल धर्म है—आघात सहने की क्षमता रखना। फिर भी परिस्थिति उसे असहिष्णु बना देती है। प्रायः पुरुष नहीं जान पाते हैं कि स्नेहमयी रमणी सुविधा नहीं चाहती है— हृदय चाहती है" (कंकाल–७५) अतएव भ्रमवश अप्रिय एवं अनर्थकारी स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

प्रसाद–साहित्य में अपवाद रूप से विषम नारी–प्रेम का परिचय भी मिलता है। उनका एक खलपात्र विकटघोष नारी–हृदय का रहस्योद्घाटन करता हुआ स्वर्णगी सुरमा से कहता है—"जब निश्वास लेलेकर सिसकती हुई किसी मूर्ख की छाती पर सुकुमार कुसुम सी व्याकुल होकर तुम पतित रहता हो, तब भी तुम्हारे भीतर व्यंग्य हँसा करता है। जब स्वयं प्राण देने के लिए प्रस्तुत होती हो तब वह कितने जीवन लेने का प्रस्ताव होता है।" (राज्यश्री–४५)

नारी का यह रूप रहस्यमय है। वह गाती तो रोती भी है, पाती है तो खोती भी है और इसीलिए वह महिमामयी है कवि के कथनानुसार—

'स्वच्छ स्नेह अन्तर्निहित फल्गु सदृश किसी समय,

कभी सिन्धु ज्वालामुखी–धन्य धन्य रमणी हृदय ॥" (काननकुसुम–७७)

प्रसाद ने नारी को उत्सर्गमयी और माधुर्यमयी घोषित किया है। वह नारी प्रेम पुरुषों का परम प्राप्य है। 'प्रलय की छाया का सुलतान अनुनय भरी वाणी से आत्मविभोर होकर कहता है।

"शासन करोगी इन मेरी क्रूरताओं पर

निज कोमलता मे–मानस की माधुरी से। (लहर–७१)

नारी के आत्मिक प्रेम में अभेदत्व है। उस प्रेम का क्षेत्र है समस्त हृदय जगत्। वहाँ संकुचित स्वार्थ नहीं है। उसके प्रेमोत्सर्ग के सन्मुख वासनाएँ कुंठित हो जाती हैं। प्रसादजी ने इसीलिए नारी को 'माया ममता का बल' 'शक्तिमयी छाया शीतल' घोषित किया है। किन्तु दुर्बुद्धिवश क्रूरकर्मा पुरुषों ने उस पर अतिचार करने का अभ्यास कर लिया है। कभी कभी तो पुरुष उसकी सत्ता का ही विस्मरण कर जाता है। मनु के प्रति काम की यह उक्ति बड़ी सटीक है—

"तुम भूलगए पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की।"

स्पष्ट है कि प्रसादजी जीवन से अभिशप्त, चिर संतप्त और तिरस्कृत नारी के प्रति संवेदनशील हैं। वे परित्यक्ता नारी के प्रति जितने सकरुण और सहानुभूतिप्रवण हैं, उतने ही तिरस्कार करने वाले व्यक्ति के प्रति क्षुब्ध एवं आक्रोशपूर्ण हैं। एक स्थान पर वे खीझकर कह उठते हैं—

" स्त्री कुछ नहीं है—केवल पुरुषों की पूँछ है—विलक्षणता यही है कि यह पूँछ कभी-कभी अलग भी रख दी जा सकती है।" (कंकाल–७०)

नरनारी प्रेम के अनेक पहलू प्रसाद-साहित्य में उपलब्ध हैं। उनकी यह भी धारणा है कि आज पुरुष नारी को अपनी कलुषित मनोवृत्तियों की तृप्ति का साधन समझ बैठा है, जो नैसर्गिक विवशता के साथ-साथ मौखिक प्रलोभन और प्रतारणा के रूप

में प्रकट होता है। उनका मत है—'स्त्रियों को उनकी आर्थिक पराधीनता के कारण जब हम स्नेह करने के लिए बाध्य करते हैं तब उनके मन में विद्रोह की सृष्टि स्वाभाविक है। आज प्रत्येक कुटुम्ब नारी के इस स्नेह और विद्रोह के द्वन्द्व से जर्जर एवं असंगठित है।.....स्त्री जिस कुल से आती है उस पर से ममता हटती नहीं, यहाँ भी अधिकार की कोई सम्भावना न देखकर सदा घूमने वाली गृहहीन अपराधी जाति की तरह कौटुम्बिक शासन को अव्यवस्थित करने में लग जाती है। यह किसका अपराध है? प्राचीन काल में स्त्री-धन की कल्पना हुई थी, किन्तु आज उसकी जैसी दुर्दशा है, जितने काण्ड उसके लिए खड़े होते हैं—वे किसी से छिपे नहीं।" (तितली-१५२) नारी के इस बाध्य प्रेम की बड़ी गूढ़ मीमांसा उपर्युक्त पंक्तियों में की गई है। प्रसादजी नारी के क्रीत, अपहृत, तथा बलात्कारजन्य प्रेम को व्यभिचार मानते हैं। यों, उनके कुछ विशिष्ट नारीपात्र अपनी नैसर्गिक प्रेम निधि को विवाह या व्यभिचार-दोनों स्थितियों में लुटाते रहते हैं, फिर भी वैवाहिक प्रेम की सामाजिक मान्यता का समर्थक है। स्त्री के सामाजिक अधिकारों पर असन्तोष व्यक्त करते हुये वे कहते हैं—'हिन्दू स्त्रियों का समाज भी कैसा है, उसमें कुछ अधिकार हो तब तो उसके लिए कुछ सोचना विचारना चाहिये... जहाँ अन्धानुकरण करने का आदेश हो वहाँ प्राकृतिक, स्त्री-जनोचित प्यार कर सकने का जो हमारा नैसर्गिक आधार है—जैसा कि घटनावश प्रायः स्त्रियाँ किया करती हैं—उसे क्यों छोड़ दें। यह कैसे हो, क्या हो और क्यों हो-इसका विचार पुरुष करते हैं। वे करें—उन्हें विश्वास बनाना है, कौड़ी पाई लेना रहना है और स्त्रियों को भरना पड़ता है। तब, इधर-उधर देखने से क्या, भरना है—यही सत्य है। उसे दिखावे के आदर ने ब्याह करके भरा लो या व्यभिचार कह कर तिरस्कार से। अधमर्ण को सान्त्वना के लिये यह उत्तमर्ण का शाब्दिक मौलिक प्रलोभन या तिरस्कार है।" (कंकाल-१७७)

निश्चय ही ये एक उन्मुक्त नारी हृदय के सच्चे उद्‌गार हैं, जिनमें दुष्प्रकार की व्यथा उत्पन्न होती है। नारी जीवन की यह व्यथा विनाशकारी होती है, क्योंकि-

"नारी का वात्सल्य अपनी एक बूंद में बढ़िया लिये रहता है।" (जनमेजय का नागयज्ञ-३१) प्रसादजी के मतानुसार पुरुष नारी के दिव्य प्रेम को अपने शोक का साधन मात्र मानता है। उस की बलवती लालसा स्त्री को भटकाती है—"पुरुष समाज में वही नहीं चाहता, जिसके लिए किसी का मन छिपे-छिपे प्राय विद्रोह करता रहता है। वह चाहता है—स्त्रियां सुन्दर हों, अपने को सजाकर निकलें और हम लोग देखकर उनकी आलोचना करें। वेश-भूषा के वह नये-नये ढंग निकालता है। फिर उसके लिये नियम बनाता है, पर जो सुन्दर होने की चेष्टा करती हैं—उसे अपना अधिकार प्रमाणित करना होता है।" (तितली-१९६) अर्थात् उनका अधिकारी पुरुष उसके सौन्दर्य, शृंगार और प्रेम का दुरुपयोग करता है। प्रसादजी नारी-प्रेम के लिए कृत्रिम सौंदर्य प्रसाधन या रूपसज्जा को व्यर्थ सिद्ध करते हैं।

स्पष्ट है कि वे सात्विक रूप के प्रेमी हैं। वस्तुतः प्रसाद-साहित्य में स्त्री और पुरुष का प्रेम-संयोग जटिलताओं से भरा है। उनके अनुसार इस पारस्परिक सम्बन्ध के विनिमय और निर्वाह की समस्या बड़ी कठिन है। आज इसी कठिन पीड़ा से उद्विग्न होकर स्त्री समाज प्रतिक्रिया प्रेरित हो रहा है, जिसे प्रसादजी विद्रोह या उद्दंडता मानते हैं न कि सुधार प्रसादजी स्त्री-पुरुष की सामाजिक आपदाओं के शमन के लिये उनके स्नेह-सम्मिलन को ही आवश्यक मानते हैं। दोनों को उत्कृष्ट परिणति-नर-नारी की अन्तःप्रकृतियों के स्नेह सम्मिलन की मंगलाशा व्यक्त करता हुआ लेखक पुरुष-जीवन के कठोर सत्य को नारी जीवन की प्रणय-मदिरा के रूप में गलाकर मिला देना चाहता है। निश्चय ही प्रसाद-साहित्य में प्राप्य नारी-प्रेम का यह आदर्श बड़ा वैशद्यपूर्ण है।

२. पुरुष प्रेम:—*प्रणय-व्यापार की इस प्रक्रिया का अपर पक्ष है-पुरुष। प्रसाद* के अनुसार यद्यपि पुरुष का अन्तःकरण नारी हृदय जैसा मृदु और सुकुमार नहीं होता, फिर भी उसके प्रणय में सुदृढ़ आस्था, अटूट निष्ठा और भावाकुल आसक्ति होती है। प्रसाद के कुछ पात्र सच्चे प्रणयी हैं, जिनके प्रणय में लोकभय, धर्म, सम्प्रदाय आदि का विचार कभी बाधक नहीं होता। इरावती का प्रणय-भिखारी

मदन्द कहता है—"प्रेम की पवित्रता प्रसन्न है इरा, मैं तुमको प्यार करता हूँ। तुम्हारी पवित्रता से मेरे मन का अधिक सम्बन्ध नहीं भी हो सकता है...मेरे प्रेम की वह्नि तुम्हारी पवित्रता को अधिक उज्ज्वल कर देगी।" (आँधी–५२)

प्रसाद के मतानुसार नारी-पुरुष का प्यार मिलकर दैवी भावना की सृष्टि करता है। उनका 'हिमालय का पथिक' एक वृद्ध किन्नरी का प्यार पाकर कहता है— मैंने देवता के निर्माल्य को और भी पवित्र बनाया है। उसे प्रेम के गंगाजल से सुरभित कर दिया है, उसे तुम देवता को अर्पण कर सकती हो।" (आकाश दीप–६३) प्रसाद के कुछ पात्र प्रेम के गूढ़ रहस्यों को सुलझा नहीं पाते और किंकर्त्तव्य विमूढ़ ज्ञात होते हैं। इरावती का अनन्य प्रेमी अग्निमित्र कालिन्दी के षडयन्त्र के प्रति अनस्पृही होकर उससे स्पष्ट कहता है—'मैं स्त्रियों के प्रेम का रहस्य नहीं समझ पाया हूँ... मैं प्रणय के स्वाध्याय में असफल विद्यार्थी हूँ। (इरावती–५३) अन्तु ये पात्र प्रेमजाल में न पड़कर सहज प्रणय को ही वरण करते हैं। उन्हें न प्रणयहीन कहा जा सकता है और न प्रणय याचक। कालिन्दी से अग्निमित्र एक बार पुनः कहता है—'मैं प्रणय का अनुग्रह का भिखारी नहीं–किन्तु हृदय हीन भी नहीं।" इरावती–५६) प्रसाद के कुछ साहसिक प्रणयोपात्र प्रणय के लिए परिणय को अनिवार्य नहीं मानते। वे स्वच्छन्द प्रेम के समर्थक हैं। 'कंकाल' का अतिवादी तथा उद्दण्ड युवक विजय अपनी अल्हड़ प्रणयिनी घटी से कहता है—'जो कहते हैं अविवाहित जीवन पाशव है, उच्छृंखल है, वे भ्रान्त हैं। हृदय का सम्मिलन ही तो ब्याह है। मैं सर्वस्व तुम्हें अर्पण करता हूँ....मैं स्वतन्त्र प्रेम की सत्ता स्वीकार करता हूँ।" (कंकाल–१७६) अनन्त इस स्वच्छन्द प्रेम द्वारा आनन्द की भी पुष्टि की गई है। 'एकघूँट' का भावुक कवि 'रसाल' उन्मुक्त प्रेम का समर्थन करता हुआ कहता है—"आनन्दातिरेक से आत्मा का साकारता ग्रहण करना ही जीवन है, उसे सफल बनाने के लिए स्वच्छन्द प्रेम करना सीखना-सिखाना होगा।" (एक घूँट–३२)

प्रसादजी ने क्रूर से क्रूर व्यक्तियों को प्रेम रसाप्लावित सिद्ध किया है। उनका महान क्रूरकर्मा चाणक्य प्रेम की रसार्द्रता से सक्ति है। उसके अव्यक्त प्रणय

की प्रतिक्रिया ही उसे व्यवस्था विरोधी बनाती है। प्रेम उसके हृदय के मध्य घटित होने वाली अवश्यम्भावी विवशता है। इसी प्रकार उनका दुर्दान्त दस्यु बुद्धगुप्त, जो पाप पुण्य-ईश्वर और किसी नियामक सत्य पर विश्वास नहीं करता, उसे भी कहना पड़ता है— "मुझे अपने हृदय के एक दुर्बल अंश पर श्रद्धा हो चली है। तुम (चम्पा) न जाने कैसे एक बहकी हुई तारिका के समान मेरे 'शून्य में उदित हो गई हो। आलोक की एक कोमल रेखा इस निविड़तम में मुस्कुराने लगी। पशुबल और धन के उपासक के मन में किसी शांत और कांत कामना की हँसी खिलखिलाने लगी। (आकाशदीप-२०)

सारांशतः—यह प्रकट है कि प्रसाद के प्रेम-पात्रों में नारी-हृदय अपेक्षाकृत अधिक सुस्निग्ध है। यद्यपि नर-नारी दोनों का सुसयोग करके उन्होंने प्रणय व्यापार का सार्वकालिक चित्रण किया है, फिर भी प्रसाद के नारी-पात्रों का प्रेम दर्शन अधिक परिपुष्ट है। प्रसाद द्वारा चित्रित इस प्रणय-सिद्धान्त को काल्पनिक कहना जल्दबाजी है। यह सत्य है कि उनके नारी-चरित्र आदर्श को लेते हैं यह भी सिद्ध है कि प्रसाद के प्रणयी पात्र बड़े सक्रिय हैं। वे राजनीति की आग से खेलते हैं, जीवन संग्राम में सोत्साह भाग लेते हैं, पर अंत में अपने जीवनधन की गोद में आत्मसमर्पण करके चिरकालिक विश्राम प्राप्त करते हैं। फूल सी सुकुमार प्रसाद की ये प्रेम-देवियाँ एक करुण गन्ध छोड़कर चली जाती हैं। उनके इस आत्म-बलिदान से क्रूरकर्मा पुरुष भी स्नेहाप्लावित हो जाते हैं। प्रसाद ने इस प्रेम को परम पुरुषार्थ के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

३. प्रेमी-युग्म:—प्रसादजी प्रेमी युग्म के प्रेम को अलौकिक स्वीकार करते हैं। इस सन्दर्भ में आचार्य मिहिरदेव की यह उक्ति स्मरणीय है—

"इस भीषण संसार में एक प्रेम करने वाले हृदय को खो देना सबसे बड़ी हानि है।"—दो प्यार करने वाले हृदयों के बीच में स्वर्गीय ज्योति का निवास है।" (ध्रुवस्वामिनी-४३)

प्रसाद की प्रणय-भावना का यह निश्चय ही एक उदात्त रूप है। उनके आदर्श प्रेमी युग्म हर स्थिति में एकरस या एकरूप रहते हैं। 'तितली' का प्रेमीयुग्म

(बन्जो–तितली) और मधुआ (मधुबन) पारस्परिक साहचर्य के कारण बहुत निकट आ जाता है। दोनों विवाह के पवित्र बन्धन में बंधकर अपनी छोटी सी, सुख से भरी गृहस्थी चलाते हैं, किन्तु कालान्तर में कुछ सामन्ती कुचक्रों से उत्तेजित होकर मधुबन मसार की व्यवस्था के विरुद्ध हो जाता है और हत्या, चोरी, पलायन और न जाने क्या क्या कर बैठता है। तितली अकेली अस्तित्व-संघर्ष करती रहती है। वह गाँव के कुछ उपेक्षित बालकों को अपनाकर एक अध्यशाला (पाठशाला) चलाती है, सबका भरण-पोषण करती है और अपनी दरिद्रता का सुख भोगती है। अपनी सुभाषिणी शैली में स्पष्ट कहती है—'मैं जानती हूँ कि तुम्हारे हृदय में मेरे लिए एक स्थान है। परन्तु मैं नहीं चाहती कि मुझे कोई प्यार करे (तितली–२४३) प्रवासी पति के प्रति उसका विश्वास इस युगल प्रेम भावना का उत्कृष्ट प्रमाण है। अपने अपराधी पति मधुबन के प्रति उसमें अटूट आस्था है। संसार भर चाहे मधुबन को चोर, हत्यारा और डाकू कहे, किन्तु वह जानती है कि मधुबन ऐसा नहीं कर सकता। उसके जीवन का एक-एक कोना मधुबन और उसके स्नेह से सम्पृक्त है। वह अपने पुरुषोचित कर्म साहस और संयम द्वारा चौदह वर्षों तक अस्तित्व-संघर्ष करती रहती है, पर अन्त में एक दिन उसका नारी हृदय कराह उठता है। ...'वह निठुर विधाता को कोसती हुई कहती है—"बचपन अकाल की गोद में, शैशव बिना दुलार का बीता, यौवन के आरम्भ में अपने बाल सहचर मधुआ का थोड़ा सा प्रणय मधु जो मिला–वह क्या इतना अमर कर देने वाला है कि यन्त्रणा से पीड़ित होकर यह अनन्त काल तक प्रतीक्षा करती हुई जीती रहेगी ?' (तितली–२७६) और फिर अपने में टूटकर वह इस दुखपूर्ण जीवन से विश्राम पाने के लिये अपने नारी-जीवन का मूल्य चुकाने (प्राणोत्सर्ग) के उद्देश्य से निकलती है कि तभी "जीवन युद्ध का थका हुआ सैनिक मधुबन विश्राम-शिविर के द्वार पर (तितली–२८०) दिख जाता है। इसके पूर्व मधुबन भी अपने कारावास काल में पश्चाताप के आँसू बहता हुआ तितली के प्रेम का स्मरण करता रहा है—"जीवन के शून्य भाग को उसी के प्रेम से, केवल उसकी पवित्रता से भर लिया होता तो आज यह दिन मुझे न देखना पड़ता।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि लेखक ने स्त्री-पुरुष को, बावजूद तमाम समता के, एक दूसरे के बिना अधूरा अर्थात् अन्योन्याश्रित माना है।

वस्तुतः प्रसाद के अनुसार प्रेम मूलरूप से युग्मक ही होता है। वह दाम्पत्य, वात्सल्य आदि रूपों में अपरिचितों के प्रति सहजतः समर्पित होता रहता है। उनके शब्दों में—"जिसको स्नेह कहते हैं, जिसको प्रेम कहते हैं, जिसको वात्सल्य कहते हैं, वह क्यों कभी-कभी चुम्बक के समान उसके साथ के लिए दौड़ पड़ता है, जिसके साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं।" (जनमेजय का नागयज्ञ-४६) अस्तु प्रसाद साहित्य में यों तो इन प्रेम-सम्बन्धों का बहुविध वर्गीकरण किया जा सकता है, फिर भी मुख्यतः इसे—दाम्पत्य, वात्सल्य, सख्य, दास्य आदि रूपों में ही विभाजित करना अधिक न्यायोचित है।

विभिन्न प्रेम सम्बन्ध:—

१. दाम्पत्य प्रेम:—दाम्पत्य एक प्रकार का रागात्मक विनिमय है जो सामाजिक सम्बन्धों का निर्वाह करता हुआ चलता है। वस्तुतः सृष्टि का यही मूल है। आदिम कामचार, सामूहिक जीवन के निर्बन्ध यौन-सम्बन्ध और उच्छृंखल पाशवी भोग-वृत्ति को एक सामाजिक अनुबन्ध (परिणय) द्वारा गार्हस्थ क्षेत्र की सीमा में धर्मसम्मत काम के रूप में जब स्थिर कर दिया जाता है तो यही दाम्पत्य कहलाता है। प्रसाद साहित्य में इसके दोनों रूप-१. सफल सुखमय दाम्पत्य २. खण्डित दाम्पत्य, वैधव्य, वैधुर्य आदि यथावत् वर्णित हैं।

१ सफल दाम्पत्यः—

प्रसादजी दाम्पत्य के प्रबल समर्थक हैं। उन्होंने आदर्श, सफलीभूत (सुखी) दाम्पत्य और असफल (खण्डित) दाम्पत्य की विभिन्न अवस्थाओं पर विशद विचार किया है और सफल दाम्पत्य को परमप्राप्य माना है। उनकी एक पात्री 'चूड़ीवाली' इसी भाव की प्रतीक है। चूड़ीवाली विलास और आमोद-प्रमोद का सौख्य-सम्भार पाकर भी आत्मतुष्ट नहीं है। उसके हृदय में कोई अभाव खटकता रहता है। लेखक के कथनानुसार—'कुलवधू बनने की अभिलाषा हृदय में, दाम्पत्य सुख का

स्वर्गीय सुख उसकी आँखों में समाया था। स्वच्छन्द प्रणय का व्यापार अरुचिकर हो गया .. उसका प्रेम क्रय करने के लिए बहुत से लोग आते थे, पर विलासिनी अपना हृदय खोलकर किसी से प्रेम न कर सकती थी। (आकाशदीप-१२४) दाम्पत्य-जीवन की असीम उत्कठावश चूड़ीवाली दुस्साध्य श्रम करती है। वह सात्विक जीवन का अभ्यास करती है। अन्त में उसका प्रिय-'सरकार-उसे गार्हस्थ्य-धर्म और दाम्पत्य सबंध के लिए स्वीकार कर लेता है। प्रसाद के मतानुसार दाम्पत्य में न बंधन है न स्वच्छन्दता। उसमें विलास का अनन्त यौवन है, क्योंकि केवल स्त्री पुरुष के शारीरिक बन्धन में वह पर्यवसित नहीं होता है। बाह्य साधनों के विकृत हो जाने तक ही उसकी सीमा नहीं गार्हस्थ्य जीवन उसके लिए प्रचुर उपकरण प्रस्तुत करता है इसलिए वह प्रेम भी है और श्रेय भी।" (आकाशदीप-२४)

इस दाम्पत्य प्रेम के परमपुनीत स्वरूप का एक उत्कृष्ट प्रमाण 'विशाख' में प्राप्त होता है। विशाख की वाग्दत्ता पत्नी चन्द्रलेखा राजा नरदेव के अविचारों से आतंकित हो पति का पलकान्तर विरह भी नहीं सह पाती (विशाख-५५) और पति की कल्याण-कामना के लिए सदैव ईश-स्तुति रहती है। (विशाख-६५) चन्द्रलेखा अनेक यातनाएँ सहकर भी अपने सतीत्व और अखण्ड दाम्पत्य प्रेम की रक्षा करती रहती है। प्रसादजी ने आदर्श दाम्पत्य प्रेम के लिए पत्नी की पति परायणता या सतीत्व को बहुत महत्त्व दिया है। उनके विचार से सतीत्व में एक ऐसी शक्ति होती है, जो पथभ्रष्ट पति को सद्बुद्धि प्रदान करती है और पत्नी को प्रतिष्ठा भी। रानी पद्मावती अपनी सपत्नी मागन्धी के षडयन्त्र के कारण पति (उदयन) द्वारा परित्यक्ता हो जाती है। उदयन उस पर हिंसात्मक भावना से उत्तेजित होकर प्रहार करता है तो भी वह अपनी अगाध पति-भक्ति वश उसकी कल्याण कामना करती रहती है। (अजातशत्रु-६०) अंत में उदयन इस एकनिष्ठ पत्नी के प्रगाढ़ प्रेम और तज्जन्य सतीत्व की शक्ति से पराभूत हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि सफल दाम्पत्य निर्वाह हेतु प्रसादजी पत्नी का सती-साध्वी होना अनिवार्य मानते हैं। उनके विचार से पत्नी का स्वावलम्बिनी होना भी आवश्यक है। उनकी पतिप्राणा

पात्रिया विषम परिस्थितियों में बड़े आत्मबल से अपनी अस्तित्व-रक्षा करती है और दाम्पत्य प्रेम को भी सुरक्षित रखती हैं। इस दृष्टि से आदर्श पात्री हैं तितली' और दूसरी सीमा पर हैं-इरावती की मणिमाला, जो संकट की आशंका से अपने श्रेष्ठि पति को त्यागकर भाग निकलती है और फिर इसके दुष्परिणामस्वरूप उनका दाम्पत्य प्रेम कुंठित हो जाता है।

सुखमय दाम्पत्य के लिए प्रसादजी ने दम्पति को क्षमा, उदारता, सहिष्णुता और संतोष का संदेश दिया है। पद-मद की महत्वाकांक्षाएं दाम्पत्य जीवन के लिए बाधक हैं। उन्होंने 'अजातशत्रु' में इन दोनों स्थितियों को प्रकट किया है। अजातशत्रु को मूर्धाभिषिक्त करने के लिए भावी राजमाता छलना गृहविद्रोह करती है। महारानी वासवी इस सबसे उपरत होकर और महाराज बिम्बसार को राज्य के इस 'भीषण भोग' से निवृत्त करके उनसे युवराजाभिषेक की घोषणा कराती है। यद्यपि यह दम्पति वानप्रस्थाश्रम में भी परतंत्र (नजरबंद) है, तो भी अपनी सहिष्णुता के कारण शांत और सुखी रहता है। इसके ठीक विपरीत है-रानी छलना, जो अपने अहं भाव के कारण दाम्पत्य प्रेम से तो वंचित हो ही जाती है, विघटन और विप्लव को भी जन्म देती है। प्रसाद के अनुसार स्पर्धाविता नारी भी दाम्पत्य का निर्वाह नहीं कर पाती। 'प्रलय की छाया' की कमला गुर्जरेश्वरी से भारतेश्वरी बनने की महत्वाकांक्षावश पति से विरहित हो जाती है और ग्लानिपूर्ण जीवन व्यतीत करती है। प्रसादजी ने महत्वाकांक्षिणी पत्नी छलना एवं कमला को विघटित दाम्पत्य प्रेम का कारण और वासवी को सुगठित दाम्पत्य का कारण माना है। इस प्रकार लेखक ने आदर्श दाम्पत्य हेतु पत्नी के औदार्य एवं समर्पण को महत्व दिया है। प्रसादजी ने दाम्पत्य हेतु पति-पत्नी के मान अभिमान को व्यक्त करके उनके खण्डित सम्बन्धों को सेवा और समर्पण के सहारे पुनः संयुक्त कर दिया है। यादवी सरमा (नागराज वासुकि की पत्नी) किंचित् व्यतिक्रमों के कारण पति-परित्यक्ता हो गयी है, किन्तु एकदिन उसे संकटग्रस्त सुनकर व्याकुल हो उठती है और कहती है- ...."नाथ। अभिमान से मैं अलग हूँ किन्तु स्नेह से अभिन्न हूँ।... इस निर्मन

वन में तुम्हारी अप्रत्यक्ष मूर्ति के चरणों पर अभिमानिनी सरमा लोट रही है। देवता! तुम संकट में हो, यह सुनकर भला मैं कैसे रह सकती हूँ। मेरी अश्रुजल समुद्र बनकर तुम्हारे घोर शत्रु के बीच गर्जन करेगा, मेरी शुभ-कामना तुम्हारा वर्म बनकर तुम्हें सुरक्षित रखेगी। तुम्हारे लिए अपमानिता सरमा राजकुल में दासी बनेगी।'' (जनमेजय का नागयज्ञ–६६) दाम्पत्य जीवन के पवित्र स्नेह सूत्र में बँधी हुई यह नारी विवश भाव से उदारतापूर्वक अपना मान-मन करके (अपराधिनी न होकर भी) प्रणत हो जाती है। वस्तुतः प्रसादजी ने नारी के अधिकार-संघर्ष की मनोवृत्ति को दाम्पत्य जीवन के लिए घातक माना है। उनकी नारियाँ अपमान, उपेक्षा तिरस्कार और अभाव सहनकरके भी दाम्पत्य की रक्षा करती हैं।

प्रसादजी की नारी पात्रियाँ दाम्पत्य के समान अधिकारों के प्रति मोहान्ध नहीं हैं। वे गृहस्वामिनी के बजाय दासी बनकर भी अपने दाम्पत्य सम्बन्ध का निर्वाह करती हैं। 'सहयोग' कहानी की मनोरमा का जीवन-सूत्र मोहन जैसे हृदयहीन युवक के हाथ में आ गया है। उसकी क्रूरता तथा मातहकारी मनोवृत्ति से मनोरमा का गृहिणीत्व दासीत्व मात्र बनकर रह गया है, फिर भी वह पतिपरायणा बनी रहती है, परिणामतः एकदिन अपनी प्रगल्भा प्रेयसी से प्रवंचित होकर मोहन उसके प्रति अभिमुख होता ही है। मनोरमा की सेवा, सहिष्णुता एवं निष्ठा के कारण इन दोनों का दाम्पत्य प्रेम अन्ततः सुखमय सिद्ध होता है। (प्रतिध्वनि–३३)

अनमेल विवाह के बावजूद भी प्रसाद के अनुसार दाम्पत्य जीवन सफल हो सकता है। उन्होंने इस ध्येय से कुछ पात्रों का हृदय-परिवर्तन किया है। "कलावती की शिक्षा" में एक मनचले (फैशनपरस्त) युवापति पर लेखक ने गृहिणीत्व की विजय दिखलाई है। श्यामसुन्दर अपनी अल्प शिक्षिता पत्नी कलावती से सन्तुष्ट नहीं है। अतः वह प्रायः उपन्यासों की कल्पित नायिकाओं के मनोनुकूल रोमैन्टिक क्रियाकलापों में तल्लीन रहता है। एकदिन कलावती एक गुड़िया को लक्ष्य करती हुई व्याज रूप में उसकी औपन्यासिक आधुनिकता का उपहास करती है। इस

व्यग्य विनोद के कारण उनकी गाठें खुल जाती हैं और पुन दोनों में सहसम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

दाम्पत्य भाव के अन्तर्गत प्रसादजी ने कर्त्तव्य को सर्वोपरि सिद्ध किया है। उनकी एक कहानी—'चित्तौड़ उद्धार' (छाया) में हम्मीर का विवाह छल से एक बाल-विधवा से हो जाता है। वह दासी बनकर आती है, पर धर्मपत्नी रूप में स्वीकृत होती है। प्रतिशोधार्थी हम्मीर पत्नी के प्रेमवश उसके पिता पर आक्रमण नहीं कर पाता, किन्तु अन्तत उसकी पत्नी उसे स्वय प्रेरित करके चित्तौड़ का उद्धार करवाती है। यहाँ लेखक ने पति प्रेम को पितृ प्रेम के ऊपर प्रतिष्ठित किया है। प्रसाद के अनुसार कभी कभी दूसरों की प्रेरणा और प्रभाव से भी दाम्पत्य सुखी बनता है। 'परिवर्तन' में चन्द्रदेव और मालती परस्पर अनमने से रहते हैं फिर भी लौकिक कर्त्तव्य की पूर्ति हेतु चन्द्रदेव अपनी पत्नी के स्वास्थ्य-लाभ हेतु उसे पर्वत पर ले जाता है। वहा मालती अपनी दासी बूटी के भावी दाम्पत्य, उसके अल्हड़ आल्हाद, प्रगाढ़ प्रेम, उन्मुक्त उल्लास और चहलपहल से युक्त जीवन को देखकर स्वत परिवर्तित हो जाती है, फलत उन्हें सच्चा दाम्पत्य-सुख अनुभव होने लगता है। (इन्द्रजाल-५०)

सुखमय दाम्पत्य के अन्तगत प्रसादजी ने कर्त्तव्यों और भावना का द्वन्द्व भी प्रदर्शित किया है। उनके कुछ नारी पात्रों में पति के प्रति मोह भी है और जीवन-कर्त्तव्यों के प्रति आस्था भी। दोनों स्थितियों में उत्सर्ग का भाव है। श्रावस्ती के युग में मालवेश बन्धुवर्मा शक और हूणों की सम्मिलित वाहिनी से आक्रान्त होकर दुर्ग रक्षा के लिए जब स्कन्दगुप्त की प्रतीक्षा कर रहा होता है तो उसकी पत्नी जयमाला का कथन उसे प्रतिरक्षार्थ प्रेरित करता है। बन्धुवर्मा के जाने के बाद अन्त: पुर की विपन्नता तथा सेना की विफलता का समाचार सुनकर अपनी स्त्रीसुलभ दुर्बलता, और प्रकृतिजन्य माया-मोह के कारण वही जयमाला पतिप्रेमवश कातर हो उठती है। राज्य-रक्षा हो जाने पर बन्धुवर्मा आर्यावर्त्त का अन्तर्विरोध मिटाने के लिये जब उज्जयिनी में सम्राट स्कन्दगुप्त के राज्याभिषेक का अनुष्ठान करना चाहता

है तो जयमाला पहने इस प्रस्ताव का प्रतिवाद करती है, किन्तु कालान्तर में उससे सहमत होकर कहती है—"पतिदेव। आपकी दासी क्षमा माँगती है....आज तुमने जो राज्य पाया है, वह विश्व साम्राज्य से भी ऊँचा है। (स्कन्दगुप्त-७२) स्पष्ट है कि प्रसादजी पतिपत्नी में मतवैषम्य का पूर्ण निषेध करते हैं। वस्तुतः दाम्पत्य हेतु मतैक्य आवश्यक है।

दाम्पत्य क्षेत्र म प्रसादजी एकनिष्ठता और एकाधिकार के जबर्दस्त समर्थक हैं। "एकघूँट" में रसाल और वनलता दाम्पत्य जीवन-यापन कर रहे हैं। कवि रसाल की प्रतिभावुकता स वनलता ऊब गई है, पर उसका प्रेम एकनिष्ठ है। उसका सिद्धान्त है . मैं जिसे प्यार करती हूँ, वही-केवल वही व्यक्ति-मुझे प्यार करे, मेरे हृदय को प्यार कर-मेरे शरीर को, जो मेरे सुन्दर हृदय का आवरण है—सतृष्ण देखे। उस प्यास में तृप्ति न हो, एक एक घूँट वह पीता चले, मैं भी, पिया करूँ।" (एकघूँट-४०) यहां एकनिष्ठ दाम्पत्य प्रेम का एकाधिकार प्रकट हुआ है। प्रसाद के अनुसार मुक्तभोग दाम्पत्य हेतु वर्जित है।

निर्धन एवं निःसन्तान दम्पति का जीवन प्रायः प्रेमहीन हो जाता है, किन्तु प्रसादजी ने पारस्परिक सौहार्द द्वारा उसे भी सुखी बना दिया है। 'तितली' में नन्दरानी बाबू मुकुन्दलाल के साथ दाम्पत्य जीवन जी रही है। "उसके सुन्दर मुख पर तृप्ति से भरी हुई निराशा है। तृप्ति इसलिए कि उसका कोई उपाय नहीं और निराशा तो है ही। उसका भविष्य अन्धकारपूर्ण है। (तितली-१६६) उसके सन्तान तो है ही नहीं, पति भी बड़े निश्चिन्त, आरामवादी, कुलीन-निर्धन, जिनके मस्तिष्क में मात्र भूतकाल की विभव-लीला के स्वप्निल चित्र भरे रहते हैं। वे भग्नपोत की तरह काल-समुद्र में धीरे-धीरे धँसते जा रहे हैं। केवल उनकी ऊर्जस्वित आत्मा का केतु ऊपर उड़ रहा है। वे अपने गार्हस्थ्य जीवन का मंगलमय भविष्य प्रायः खो बैठे हैं। किन्तु नन्दरानी उन्हें अपने स्नेहपूर्ण स्नेह से आप्लावित करती रहती है, जिनसे अभावों की परिणति भाव में होती है।

उपर्युक्त तथ्यों द्वारा प्रकट होता है कि प्रसादजी को दाम्पत्य विषयक

धारणा बड़ी उदात्त है। उनके ये चित्र किंचित् कल्पित और आदर्श आरोपित अवश्य कहे जा सकते हैं, फिर भी ये बड़े प्रभावोत्पादक एवं प्रेरणादायक हैं। दाम्पत्य प्रेम निर्वाह हेतु उन्होंने पत्नी को अधिक उत्तरदायी सिद्ध किया है। इस आदर्श दाम्पत्य प्रेम के अतिरिक्त कुछ खण्डित दाम्पत्य के चित्र भी यहाँ द्रष्टव्य हैं। दम्पति के पारस्परिक मनोमालिन्य और विचार वैमिन्नय के कारण दाम्पत्य जीवन प्रायः कलहपूर्ण हो जाता है, जिससे विच्छेद (तलाक) और विघटन की स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। अस्तु इस खण्डित दाम्पत्य और वैधव्य का उल्लेख भी अपेक्षित है।

२. खण्डित दाम्पत्य — दम्पति में सामान्यतः मतैक्य आवश्यक होता है। प्रतिवादी विचार वैषम्य के कारण पारिवारिक जीवन छिन्न-भिन्न हो जाता है। प्रसाद-साहित्य के ये प्रकरण विचारणीय हैं। 'अजातशत्रु' की छलना राजमातृत्व की लालसावश अपनेपति बिंबसार के विरुद्ध षडयन्त्र रचती है। उदयन की रानी मागन्धी भी, जिसके मादक रूप से अभिभूत होकर सम्राट ने उसे सर्वोपरि स्थान दिया है, 'रूपगर्विता' बनकर प्रगल्भताचरण करती है। नारी की कूट छलना उसे उत्तेजित करती है, अस्तु अपने छलछद्म से वह सम्राट को मोहान्ध करके सपत्नी वासवदत्ता को उपेक्षित तथा पद्मावती को दण्डित कराकर अपनी सापत्य ज्वाला तथा अधिकार-भावना को शांत करती है। यही नहीं.. महल में आग लगाकर वह भागती है और वार विलासिनी बनती है। अंत में प्रवंचित तथा आहत होकर गौतम की शरण में जाती है। उनके सदुपदेश से तपे हुए हेम की भाँति निष्कलुष हो जाती है और आम्रपाली बनकर संघ की सेवा करती है। कोशल नरेश प्रसेनजित की महारानी शक्तिमती, जो दासी-पुत्री होकर भी सम्राज्ञी बनजाती है, प्रतिशोध एवं हीनताग्रंथि के कारण महत्वाकांक्षा के प्रदीप्त कुण्ड में कूद पड़ती है। जीवन के इस क्रूर व्यवसायों से परास्त होकर अंत में वह भी देवी मल्लिका के सम्पर्क में नारी जीवन का सुख-सौभाग्य प्राप्त करती है। 'कामना' में इसी प्रकार लालसा और विनोद का जीवन यातना के क्षणिक आकर्षण-विकर्षण के कारण विग्रहपूर्ण बन जाता है। यह उच्छृंखलता तो दाम्पत्य प्रेम में बाधक है ही, लोकलज्जा कम बाधक नहीं है। प्रसाद

साहित्य में लोभमय के कारण अनेक दाम्पत्य सबंधी टूटतेहुए दिखाए गए हैं। स्कन्दगुप्त और देवसेना इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। कामना और सन्तोष का भी स्नेहसूत्र इसी समाज भीरुता के कारण टूट जाता है। विवेक कहता है—"जब हृदय ने पराभव स्वीकार करके विजय माला तुम्हें पहना दी और तुम्हारे कपोलों पर उत्साह की लहर खेल रही थी, उसी समय तुमने ठोकर लगाकर मेरी सुन्दर कल्पना को स्वप्न कर दिया ।" (कामना ७१)

दम्पति में पारस्परिक सहानुभूति न होने के कारण उनके प्रेम सबंध के विच्छिन्न अथवा असफल हो जाने की आशंका रहती है। 'प्रेमपथिक' के बालसखा किशोर और पुतली बहुत कुछ इसी कारण वियुक्त हो जाते हैं। विवाह बन्धन में बँधकर पुतली जिस घर में गई, वहाँ, "प्रेम सहानुभूति का तो कुछ लेश न किसी हृदय में था।" (प्रेमपथिक-२०) वह चेतनमुक्त पुजारिनी सी 'एक पत्थर' की आराधना करती रही और पतिमृत्यु के बाद तापसी बन गई। उसका जीवन आद्यन्त वियोगात्मक है। कभी-कभी पति की लम्पटता और कपटाचरण के कारण भी दाम्पत्य जीवन अस्तव्यस्त हो जाता है। 'विशाख' में नरदेव की रानी पति के दुरा-चरणों से क्षुब्ध होकर अपनी आत्महत्या कर लेती है और इस प्रकार सम्राट को 'शुभ सत्व' की ओर अभिमुख करती है। 'तितली' में श्यामदुलारी की पुत्री माधुरी अपने मद्यप और लम्पट पति श्यामलाल से असन्तुष्ट हो जाती है, क्योंकि श्यामलाल चचला अनवरी के प्रति आकृष्ट है। (तितली-१४६) इस कपटाचरण से दो हृदयों में दूरी आ जाती है। श्यामलाल अपनी कामुक वृत्ति के कारण पत्नी से उपेक्षित होकर वैश्या मैना के साथ भाग जाता है, फलतः माधुरी का जीवन वैभव सम्पन्न होकर भी अभावग्रस्त हो जाता है।

प्रसादजी ने उस पुरुष को दाम्पत्य के उपयुक्त नहीं माना है, जो अपनी पत्नी के सतीत्व की रक्षा नहीं कर पाता, बल्कि उसे उपहार की वस्तु समझ-कर परपुरुषगामिनी बनने को बाध्य करता है। लेखक ने ऐसे 'क्लीव' पुरुषों के दाम्पत्य सूत्र को शास्त्र-सम्मत व्यवस्था देकर खण्डित करा दिया है। रामगुप्त

वाग्दत्ता पत्नी, ध्रुवदेवी को बर्बर हूणों से आतंकित होकर उपहारार्थ भेजना चाहता है, पत्नी को पशुसम्पत्ति समझकर वह सबके भोग्या बना देना चाहता है और वैवाहिक प्रतिज्ञा का विस्मरण करके यही प्रवचना करता है कि—पुरोहितों ने ही ऐसी प्रतिज्ञा की होगी—मैं द्राक्षासव में डुबकियाँ लगा रहा था।' रानी की शक्ति और कुमार चन्द्रगुप्त के शौर्य के सहारे दस्यु का वध होता है और फिर 'क्लीव', का पुरुष' रामगुप्त के पतित्व से मुक्त होकर रानी शास्त्रीय नियमानुसार चन्द्रगुप्त की पुनर्विवाहिता धर्मपत्नी बन जाती है।

प्रायः आशंका और अविश्वास के कारण भी दाम्पत्य प्रेम को आघात पहुँचता है। प्रीति बिना प्रतीति के असम्भव है। इरावती में श्रेष्ठि धनदत्त और उसकी पत्नी मणिमाला इसके उदाहरण हैं। दोनों में न पारस्परिक प्रीति है और न प्रतीति। एकबार मणिमाला शत्रु के आक्रमण से भयविह्वल होकर भागती है तो श्रेष्ठि धनदत्त को उसके आचरण पर संदेह हो जाता है। मणिमाला को भी उसकी मितव्ययिता, वाणिज्यवृत्ति तथा व्यावसायिक व्यवहार-चातुरी को देखकर पर नारी-प्रेम की आशंका होती है। परिणामतः दोनों उदासीन हो जाते हैं। इस अपूर्ण कथानक में दोनों के सम्बन्ध-विच्छेद का अनुमान किया जा सकता है।

प्रसादजी के अनेक पात्र खण्डित दाम्पत्य की स्थिति में भी अपने पूर्व प्रणयी से एकात्म रहते हैं। वे विच्छेद भाव से बहुत दूर हैं। 'कंकाल' की तारा मंगल के प्रति आत्मसमर्पण करती है किन्तु सामाजिक विडम्बनाओं के कारण मंगल उसे अपना नहीं पाता। अनब्याही माँ तारा किसी प्रकार छद्मवेष में अपने कौमार्य मुक्त वैधव्य के दिन काटती है। मंगल के निकट रहकर भी उससे अपरिचित बनी रहती है। उसके अन्तरतम में मंगल के प्रति अक्षुण्ण आस्था है। (कंकाल-१०८) विजय द्वारा विवाह के प्रस्ताव किए जाने पर यमुना स्पष्ट कहती है. 'किसी के हृदय की शीतलता और किसी के यौवन की उष्णता मैं सब भेल चुकी हूँ। उसमें सफल नहीं हुई। उसकी साध भी नहीं रही।" (कंकाल-१११) वह गंगा में जल समाधि लेने के पूर्व ईश्वर को साक्षी करके कहती है—"मंगल। अवश्य जानते होगे कि तुम्हारी यमुना

पवित्र हूँ। कभी मैंने स्वप्न में भी तुम्हें छोड़कर इस जीवन में किसी से प्रेम नहीं किया, और न तो मैं कलुषित हुई। यह तुम्हारी प्रेम भिखारिनी पैसे की भीख नहीं माग सकती और न पैसे के लिए अपनी पवित्रता बेच सकती है।" (कंकाल ५८) संबंध-विच्छेद के बाद भी यह पति-परायणता एकनिष्ट प्रेम का आदर्श है।

दाम्पत्य-विखण्डन यदा-कदा पुत्र लालसा के कारण भी देखा जाता है। 'कंकाल' के किशोरी और श्रीचन्द्र इसके उदाहरण हैं। किशोरी पुत्र कामना के पीछे प्रमत्त है और श्रीचन्द्र व्यवसाय-वृद्धि में बेसुध हैं—फलत: दोनों विमुक्त हो जाते हैं। प्रसाद के अनुसार ऐन्द्रिय वासना खण्डितदाम्पत्य की हेतु है। 'कंकाल' की लतिका कैथोर्य भावुकतावश बाथम के प्रति व्यासक्त होकर अपना धर्म-परिवर्तन तक कर लेती है, पर सम्यकनिर्वाह न हो पाने से उसे पति-परित्याग करना पड़ता है। स्पष्ट है कि प्रसाद का दाम्पत्य प्रेम वैविध्यपूर्ण है। यह ज्ञातव्य है कि प्रसादजी ने संबंध-विच्छेद की स्थिति में भी पुनर्मिलन या आत्मिक मिलन की आदर्शोन्मुखी स्थितियों की अवतारणा कराई है और इस प्रकार दाम्पत्य प्रेम को सुसगठित रखने का प्रयास किया है।

वैधव्य तथा वैधुर्य —

प्रसाद-साहित्य में विधवाओं और विधुरों का आदर्श भी दृष्टिगत होता है। विधवा जीवन को लेखक ने विशेष महत्ता प्रदान की है। 'तितली' की विधवा श्यामदुलारी अपने सदाचरण, पति-प्रेम और सतीत्व द्वारा एक आदर्श प्रस्तुत करती है। 'अजातशत्रु' की देवी मल्लिका विरुद्धक द्वारा पति की हत्या किए जाने पर भी कर्त्तव्यच्युत नहीं होती, बल्कि विरुद्धक को घायल करके वह अपना वैधव्य-व्रत निबाहती रहती है। इसी प्रकार राज्यश्री, श्यामा, बिन्दो (आँधी) घंटी (कंकाल) तथा राजकुमारी (तितली) एकाकी जीवन-यापन करती हुई दिखाई गयी है। विधुर पुरुषों में 'कंकाल' के विजय को उद्धृत किया जा सकता है, जो घंटी से वियुक्त होकर फिर माला का परिणय नहीं स्वीकार करता और आजीवन वैधुर्यव्रत का पालन करता है। प्रसादजी ने दाम्पत्य प्रेम के ही सन्दर्भ में अविवाह को

समास्या भी उठाई है। उनके कुछ पात्र श्रेष्य या मनोनुकूल साथी के न मिलने पर आजीवन अविवाहित रह जाते हैं, जैसे–स्कन्दगुप्त। दाम्पत्य प्रेम के कतिपय अन्य उल्लेखनीय पक्षों में पुनर्विवाह, बहुविवाह, विधवा विवाह, अनुलोम, प्रतिलोम विवाह, अनमेलविवाह, संस्कार युक्त विवाह, गन्धर्व (प्रेम) विवाह, अन्तर्जातीय, अन्तर्देशीय विवाह आदि की न्यूनाधिक समस्याएं प्रस्तुत करके लेखक ने विभिन्न सम्प्रदायों, समाजों तथा वर्गों के दाम्पत्यजीवन का सांस्कृतिक इतिहास भी प्रस्तुत किया है।

२. वात्सल्य प्रेम:—

मातृ-पितृ और पुत्र हृदय का पारस्परिक सम्बन्ध वात्सल्य है। सन्तान वस्तुतः दो हृदयों की भी भावात्मक उद्रेक है। वह नारी (माँ) के अर्न्तमन का सकरुण उल्लास है। प्रसादजी ने पुत्र को अपनी ही आत्मा का 'अंश' कहा है। (अजातशत्रु–१०) उनकी नारी 'जाया से जननी' बनकर अपने ऐकान्तिक प्रेम को सतति-सेवा में पर्यवसित कर देती है। कामायनी (श्रद्धा) मनु की सहचरी बनकर जब कर्मक्षेत्र में उतरती है तो उसके हृदय का मूक प्रणय शनैः शनैः सन्तान के प्रेम (वात्सल्य) के रूप में परिणत हो जाता है। मनु की ईर्ष्या इसे 'दुर्वह दुविधा' तथा 'प्रेम बटने का प्रकार' समझ बैठती है। वह अपने 'ममत्व' के एकाधिकार तथा एक तत्त्व की आकांक्षा प्रकट करता है, पर गर्भिणी श्रद्धा 'भावी जननी का सहजगर्व' (कामायनी–१७७) नहीं भुला पाती। श्रद्धा का यह वत्सलभाव देखकर ईर्ष्यालु मनु उसका परित्याग करके चला जाता है, पर श्रद्धा 'पिता के प्रतिनिधि' अपने पुत्र मानव का लालन पालन करती रहती है। पति और पुत्र में वह पुत्र को अधिक प्यार करती है, जिससे वात्सल्य की अनन्यता सिद्ध होती है। हाँ उसका वात्सल्य मोहान्ध नहीं है। लोकहित (वंश वृद्धि) के लिए वह अपने पुत्र 'मानव' को इड़ा के लिए दे देती है।

वात्सल्य-रस का यह परिपाक प्रसादजी ने अनेक पात्रों में भी किया है। स्कन्दगुप्त की माता देवकी आमरण उसी की मंगल कामना करती रहती है स्कंद की

हत्या के षड्यन्त्र की सूचना पाकर वह विकल हो जाती है और पूछती है—"कहाँ है मेरा सर्वस्व, मेरे आनन्द का उत्सव, मेरी आशा का सहारा, आर्यावर्त का रत्न, देश का बिना दाम का सेवक .जन साधारण के हृदय का स्वामी। (स्कन्दगुप्त–६८) इन विशेषणों में माता की वत्सलता का प्रमाण प्राप्त है। अन्त में स्कन्द की मृत्यु की आशंका में उसकी हृदयगति तक रुक जाती है। भटार्क की माता कमला भी स्नेहातिरेकवश उसका मार्गनिर्देशन करती रहती है। 'अजातशत्रु' में कुणीक की माता छलना पहले उसे उत्तेजित करके उत्पात मचाती है पर पुत्र के बन्दी हो जाने पर व्याकुल होकर कहती है मैं नहीं जानती थी निर्मम इतनी करुणा और इतना स्नेह सन्तान के लिए इस हृदय में संचित था।

प्रसादजी की पुत्रप्राणा नारियां पुत्र–वियोग तो कदापि नहीं सहन कर पाती। वे पुत्रेच्छा पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देती हैं। 'कंकाल' की किशोरी अपने पुत्र विजय के प्रतिवादी (उद्दाम) स्वभाव से रुष्ट होकर चली जाती है, पर पुत्र स्नेहवश पुन लौट आती है और पुत्रवियोग रुग्णा हो जाती है। यही नहीं, अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में अपने पुत्र विजय को भिखारी और गोंयड़ के वेश में देखकर वह संज्ञाशून्य तक हो जाती है।

वात्सल्य प्रेमवश प्रसाद की नारियाँ हर स्थिति को अंगीकार कर लेती है। 'कंकाल' के श्रीचन्द्र की दासी यमुना अपने अप्राप्य पुत्र मोहन सहज स्नेह वश दासीकर्म तक करती है। 'कंकाल' की चाची (नंदो चौबाइन) अपनी धर्मच्युता, भूली और विधवा कन्याघन्टी को पाकर हर्ष गदगद हो जाती है। तितली पुत्र प्रेमवश अपनी लम्बी वियोगावधि पार कर लेती है, पर पुत्र की आशंका से भयभीत होकर आत्म–हत्या तक के लिए उद्यत हो जाती है, ताकि उसके 'जीवन का पुण्य' उसे कलंकिनी न समझे। माता श्यामदुलारी (तितली) माधुरी की विपन्नावस्था पर दयार्द्र होकर उसे अपनी चल–अचल सम्पत्ति की स्वामिनी बना देती है। 'कंकाल' की सरला अपने खोए पुत्र मंगल के लिए हर प्रकार आत्मविह्वल दिखाई देती है। उसका कलेजा रोता है, हृदय कचोटता है, आँखें छटपटाती हैं, तरकटा तीव्र

है। उसका कलेजा रोता है, हृदय कचोटता है, आँखें छटपटाती है, उत्कटा तीव्र होती जाती है। वह विजय से कहती है—'पुत्र का स्नेह बड़ा पागल स्नेह है। स्त्रियां ही स्नेह की विचारक हैं। पति के प्रेम और पुत्र के स्नेह में क्या अन्तर है, यह उनको ही विदित है।' वह पचीस वर्ष पूर्व की घटना का स्मरण करके अपने जीवन के सर्वस्व-पुत्र को परमात्मा के वरदान के समान शीतल, शान्तिपूर्ण निधि, हृदय की आकांक्षा के सदृश मर्म, मलय पवन के समान कोमल सुखद स्पर्श तथा दृढ़ सत्य मानती है।

वात्सल्यवश प्रसाद की वृद्ध माताएं प्रतिशोधातुर तक हो जाती हैं। 'विराम-चिन्ह' की एक वृद्धा राधे नामक अपने अछूत पुत्र को पहले तो देव मंदिर में जाने से रोकती है, पर जब हठात् वह चला ही जाता है, और 'सवर्णों' व्यक्तियों द्वारा आहत होता है, तो उस प्रतिशोधातुर वृद्धा का वात्सल्य उग्र हो जाता है और वह मंदिर के द्वार पर प्राणार्पण कर 'विरामचिन्ह' सी पड़ जाती है। कहीं-कहीं वात्सल्य दाम्पत्य का योजक बन गया है। चम्बिगाड़—की सर्व श्रेष्ठ सुन्दरी सालवती अपने सौन्दर्य और यौवन को अक्षुण्ण रखने के लिए आसन्न प्रसूतपुत्र को फेंक देती है। सालवतीका पूर्वप्रणयी अभयकुमार उसकी रक्षा करता है। वर्षों बाद जब इसका रहस्योद्घाटन होता है तो सालवती उस पुत्र की प्राप्ति के लिए लालायित हो जाती है और अभयकुमार को अपना जीवनसाथी स्वीकार करती है। प्रसाद का 'गूदड़साईं' (प्रतिध्वनि) शिशु स्नेह के कारण पागल सा घूमता रहता है। गान्धार नरेश की पुत्री अलका (चन्द्रगुप्त) जब राष्ट्रीय सुरक्षा हेतु घर से चली जाती है तो वह वृद्ध पिता उसे उन्मत्त सा ढूंढता रहता है। अन्त में स्वस्तिमती अलका को सौभाग्यवती देखकर वह प्रसन्न होता है। सिल्यूकस अपनी दुहिता कार्नेलिया की मनोकामनाएं समझकर उसे अपने शत्रु चन्द्रगुप्त की पत्नी बना देता है। 'ध्रुवस्वामिनी' में आचार्य वारहमिहिर शकराज से तिरस्कृत कोमा नामक अपनी पोषिता पुत्री को अपने साथ लेजाकर अपने इसी वात्सल्य का परिचय देता है।

यह वात्सल्य कभी-कभी स्वार्थ प्रेरित होकर अनुचित भी हो जाता है। उदाहरणार्थ-'कंकाल' की तारा सदेह के कारण पिता द्वारा तिरस्कृत होती है। 'वेटी'

कहानी (आँधी) का सूरदास भीख माँगने के लिए अपने पुत्र के पैरों में बेडी डाल देता है, ताकि वह भाग न सके। फलतः एक दिन वह दबकर मर जाता है। 'करुणालय' में अजीगर्त अपने मध्यम पुत्र शुन:शेफ को नरबलि हेतु दो सौ गायों के मूल्य पर बेंच देना चाहता है। अन्त में किसी प्रकार विश्वामित्र द्वारा उसकी रक्षा होती है। स्पष्ट है कि वात्सल्य के अनेक पक्ष प्रसाद-साहित्य में द्रष्टव्य हैं। ये इसी कथन के साक्षी हैं कि प्रसादजी वात्सल्य के प्रति निरन्तर आकृष्ट रहे हैं।

३ मातृपितृ प्रेम :—

प्रसादजी के अनेक पात्र मातृ-पितृ पूजक हैं।, कहानी में जहानारा अपने पिता शाहजहाँ की मृत्युपर्यन्त सेवा करती है। 'जनमेजय के नागयज्ञ' में जनमेजय अपने पिता परीक्षित के प्रतिशोध हेतु नागयज्ञ करता है। इसी नाटक के कुछ पात्र, जैसे—चन्द्रलेखा और सोमश्रवा पारस्परिक सहयोग से पितृ संकट की कोई विश्राम स्थितियों को सुलझाते हैं। 'तितली' में शैला अपनी माता और पिता (वाटसन) की स्मृतिमात्र से गद्गद हो जाती है। लेखक के शब्दों मे—'माता का प्यार उसकी स्मृति मात्र से उसे सहलाने लगा। उस भयानक लहर मे माता का स्नेह जल बिखर रहा था। (तितली-७१) इसी प्रकार 'आकाशदीप' की चंपा अपने प्रेमी किन्तु पितृहता दस्यु बुद्धगुप्त को पितृप्रेमवश आत्मसमर्पण नहीं करती। वह एक ओर प्रतिशोधातुर है दूसरी ओर प्रेमातुर। कर्त्तव्य और भावना के द्वन्द्व मे वह आत्म-यातनाएँ सहती हैं और पितृप्रेम का परिचय देती है। 'चन्द्रगुप्त'की सुवासिनी अपने पिता शकटार के पुनर्मिलन से हर्षविह्वल होकर अपने स्नेहोपचारों द्वारा उसके टूटते हुए हृदय को जोड देती है। सम्राट चन्द्रगुप्त अपने पूज्यपिता मौर्य को अपमानित समझकर अपने गुरु और भाग्य विधाता चाणक्य तक से विरोध मोल लेता है।... ये प्रसाद के आदर्श मातृ-पितृ प्रेम के कुछ ज्वलन्त उदाहरण हैं।

४ भ्रातृ प्रेम :—

प्रसाद-साहित्य में भातृप्रेम के भी अनेक उदाहरण हैं। 'कंकाल' के विजय से यमुना भ्रातृत्व—भाव की भीख माँगती है और आद्यन्त दासी वृत्ति द्वारा अर्जित

रूखी, सूखी रोटी के टुकडे खा-खिलाकर अपना कर्त्तव्य पूरा करती रहती है। 'अजातशत्रु' में पद्मावती अपने भाई कुणीक को सहृदयता की शिक्षा देती है। वह क्षणिक आवेग में भले ही पद्मावती को अपमानित करता है, किन्तु बाद मे सचेत होकर उससे क्षमा-याचना करता है। राज्यश्री अपने पति [redacted] मरणोपरान्त सती होना चाहती है, पर अपने अनुज हर्षवर्धन के आग्रह पर कहती है— मैं तुम्हारे लिए जीवित रहूँगी मेरे अकेले भाई ! मुझे क्षमा करो।' इस प्रकार वह सच्चे भ्रातृ-प्रेम का परिचय देती है। कहीं-कहीं भ्रातृ-प्रेम का अभाव भी दिखाई देता है, जैसे, तितली के इन्द्रदेव और माधुरी में, फिर भी लेखक ने यथासभव उसकी आदर्श परिणति की है। इससे स्पष्ट है कि प्रसादजी भ्रातृत्व सबधी धारणा भी बड़ी दृढ है।

५. सख्य प्रेम —

प्रसादजी की सख्य भावना बड़ी व्यावहारिक है। वे मैत्री के प्रति बहुत उदार नहीं हैं। 'आंधी' में उन्होंने अपना यही दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। प्रसादजी हर परिचित को मित्र नहीं स्वीकार करते, उसे 'परिचित' का ही सबोधन देते हैं। फिर भी उनके साहित्य मे सख्य प्रेम के अनेक स्थल प्राप्त होते हैं। जैसे—शैला को देखकर तितली के हृदय में मैत्री की भूख जगती है और दोनों सहेलियां बन जाती हैं। प्रसादजी ने मैत्री का रूपान्तर दाम्पत्य मे भी किया है। शैला इन्द्रदेव की मित्र है, जो धीरे धीरे उनकी पत्नी बन जाती है। तितली और मधुबन भी दम्पति होने के पूर्व बाल—सहचर ही हैं। 'कंकाल' में मगल और विजय बालेज के साथी छात्र हैं जिनमें घनिष्ठ मैत्री है। मदनमृणालिनी (छाया) का सम्बन्ध भी सख्य भावना से ही प्रेम के रूप में परिणत होता है। 'प्रेमपथिक' की पुतली पहले किशोर की बाल सखा है। वह सांसारिक विघ्नों से वियुक्त होकर अन्तत चिरकालिक सयोग प्राप्त करती है। सख्य-भावना के कृत्रिम शिष्टाचार को 'प्रसाद' जी ने प्राय. सच्ची आत्मीयता में पर्यवसित कर दिया है।

६ दास्य प्रेम :——

प्रसादजी के कुछ स्वामिभक्त पात्रों का उल्लेख भी प्रस्तुत्य है। 'अजातशत्रु' में सम्राट बिंबसार जब विश्व के भीषण भोग से परास्त होकर उपवन में वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करते हैं, उनका स्वामिभक्त अनुचर जीवक भी राजनीतिक कूटचक्रों में लिप्त न रहकर सम्राट की पाद—सेवा करने लगता है। 'स्कन्दगुप्त' में रामा दासी अपनी स्वामिनी देवकी देवी की प्राणरक्षा के लिए मरने को प्रस्तुत हो जाती है। यही नहीं, पति की हत्या तक के लिए उद्यत दिखाई देती है। इसीप्रकार कंकाल की दासी यमुना स्वामिनी किशोरी की गृह सेवा बड़ीलगन और असीम भक्ति के साथ करती है। प्रलय की छाया' में अपने स्वामी गुजरेश्वर के प्रतिशोध हेतु अलाउद्दीन का वध करने वाला मानिक भी उल्लेख्य है। प्रसाद के पात्रों का यह दास्यप्रेम वस्तुतः बड़ा प्रभावोत्पादक है।

निष्कर्ष यह है कि व्यष्टिगत प्रेम के विविध रूप प्रसादजी के साहित्य में समुद्घाटित हुए हैं। प्रेम के इन रूपों में यद्यपि आदर्श स्थापन का प्रयास है, फिर भी स्वाभाविकता कम है। अनुपात के आधार पर ये प्रेम संबंध कहीं-कहीं श्रद्धा—भक्ति के रूप में दिखाई दे सकते हैं, फिर भी सर्वांगीण रूप से इन्हें प्रेम का अंगभूत मानना ही अधिक समीचीन है।

(ब) समष्टिगत प्रेम ——

प्रसादजी ने व्यष्टिगत प्रेम को समष्टिगत प्रेम में परिणत करने का प्रयत्न भी किया है। उनके साहित्य में सार्वभौमिक चेतना और समष्टिमूलक अभेदात्मकता का प्राय: उद्घोष हुआ है। 'कामना' में प्रसादजी ने सर्वसमन्वय तथा अखण्ड मानवतावाद का स्पष्ट संदेश दिया है (द्रष्टव्य–कामना–६८)। 'आँसू' में कवि ने वैयक्तिक अनुभूति को 'विश्वसदन' में घटित कराया है और 'कामायनी' में शक्ति के बिखरे विद्युत्कणों के समन्वय का निर्देश दिया है। स्पष्ट है कि प्रेम के क्षेत्र में प्रसादजी मूलत: समष्टिवादी हैं।

वस्तुत: प्रसाद साहित्य विकासशील जीवनानुभूतियों की एक अविकल अभिव्यक्ति है। उसमें प्रेम सौन्दर्य की आनुषंगिक विचारणा तथा जीवन की समन्वयशील

सम्वधना का सुविन्यास है। अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भिक चरण में प्रसाद यौवन-विलास, रूप भोग, मस्ती और खुमारी के चितेरे रहे हैं, किन्तु कालान्तर में उन्होंने इस ऐहिक मनोभाव को वैयक्तिक सीमाओं से बाहर ले जाकर समरसता मूलक आनन्दवाद की दार्शनिक पीठिका पर प्रतिष्ठित कर दिया है। यहीं उनका प्रेम भौतिकता से अध्यात्म और व्यष्टि से समष्टि की ओर मर्यादित होता दिखाई देता है। प्रसाद के मूल में यद्यपि व्यक्ति के प्रति प्रबल आकांक्षा रही है, फिर भी कवि ने उसे विराट चेतन सत्ता की ओर मोड़कर विश्व बन्धुत्व (सर्वात्मवाद) की कोटि तक पहुँचा दिया है। इस समष्टिगत-प्रेम के कई उपादान तत्व हैं जैसे—राष्ट्रप्रेम, विश्वप्रेम, भगवत्प्रेम आदि।

१. राष्ट्र प्रेमः—

प्रसादजी ने अपने पुरादर्शवाद के सहारे भारत के गौरवपूर्ण इतिहास को कलात्मक पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित किया है। रणक्षेत्र में समवतस्वर से गाए गाए मातृगुप्त के इस गीत में वस्तुत उनकी देश-भक्ति की भावना मुखरित हो रही है—

'हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार,

उषा ने हँस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक हार।

जगे हम, लगे जगाने विश्व लोक में फैला फिर आलोक। (स्कन्दगुप्त १५०)

उपर्युक्त 'राष्ट्रगीत' में सृष्टि के उद्‌भव एवं विकास से सम्बन्धित भारतीय संस्कृति की युगयुगीन गौरव-गाथाएँ अंकित हुई हैं। कवि अत्यन्त सुदृढ़ स्वरों में अपनी जन्मभूमि की घोषणा करता हुआ कहता है—

"हमारी जन्म भूमि थी यहीं कहीं से आए थे हम नहीं. । यह अतीत गाथा मात्र ऐतिहासिक रोमांस की वस्तु नहीं है, इसके द्वारा वह वर्तमान जीवन को भी उत्प्रेरित कर रहा है—

"वही है रक्त, वही है देश वही साहस है वैसा ज्ञान।

वही है शान्ति वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्य सन्तान।

जिएँ तो सदा उसी के लिए यही अभिमान रहे, [illegible] हर्ष।

निछावर करदें हम सर्वस्व हमारा प्यारा भारतवर्ष ।।" (स्कन्दगुप्त–१५१)
यह गीत अपने संक्षिप्त रूप में राष्ट्रीयगीत पद का अधिकारी है, क्योंकि इसमें भारतीय संस्कृति का उत्कर्ष प्रकट हुआ है, साथ ही इसमें अद्भुत प्राणवत्ता है। यह उद्बोधन गीत अपने ओज एवं सप्रेरकतत्व के कारण अनन्य है। इसी प्रकार 'नागयज्ञ में मनसा का यह प्रमाण गीत निष्क्रिय भारतीयों को उद्बोधित करता हुआ ज्ञात होता है—

'क्या सुना नहीं कुछ अभी पड़े सोते हो,
क्यों निज स्वतन्त्रता की लज्जा खोते हो।
जब दर्प भरा अरी चढ़ा चला आता है,
तब भी तुम में आवेश नहीं आता है,
अपने स्वत्वों से स्वयं हाथ धोते हो।।" (जनमेजय का नागयज्ञ–८१)

यहां ऐसा प्रतीत होता है मानों कवि भारतीयता की विध्वंसक शक्तियों (यवन, आंग्ल, अनार्य, विदेशियों और विधर्मियों) से प्रतिरक्षा करने एवं प्रतिशोध लेने हेतु भारतीय वीरों को उत्प्रेरित कर रहा है। प्रसाद-साहित्य में नव जागरण का हाहाकार ही नहीं, बल्कि लक्ष्यसिद्धि का जयजयकार भी प्राप्य है। "कामना" में इसीप्रकार का विजयोल्लास भारतीय संस्कृति की पुन प्रतिष्ठा एवं पाश्चात्य सभ्यता के पूर्ण पराभव के पश्चात् प्रकट हुआ है। राष्ट्र प्रेम के क्षेत्र में प्रसाद के नारीपात्र बहुत सक्रिय है। 'चन्द्रगुप्त' में अलका जैसी वीरांगनाएँ नई दिशा एवं नयी प्रेरणा सहित नव प्रयाण को नयी गति प्रदान करती हैं—

'अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ प्रतिज्ञ सोच लो।
प्रशस्त पुण्य पथ है बढ़े चलो बढ़े चलो..।"

राष्ट्रीय उत्साह और पौरुष के साथ-साथ प्रसादजी ने राष्ट्रीय भावात्मक एकता को भी बहुत प्रश्रय दिया है। उनके अनेक पात्र, राष्ट्र देवता का अभिनन्दन करते हुए राष्ट्र के सोये हुए अभिमान को जगाने का उपक्रम करते है। 'चन्द्रगुप्त' में महामति चाणक्य आत्मसम्मान के दिव्य जीवन के लिए 'मालव और मागध

'को भूलकर समस्त आर्यावर्त का नाम लने" के लिए भारतीय वीरों को उत्प्रेरित करते हैं। राष्ट्रीय गौरव की रक्षा के लिए युद्ध क्षेत्र में क्षत-विक्षत सम्राट पौरव 'जननी और जन्मभूमि [redacted] नाम पर' अपने पलायनोन्मुखी सैनिकों को मर मिटने के लिए उत्तेजित करते हैं। सम्राट पौरव की इस 'अलौकिक वीरता का स्वर्गीय दृश्य' देखकर तथाकथित विश्वविजेता अलक्षेन्द्र (सिकन्दर) उसके साथ सम्राटों का जैसा व्यवहार करता हुआ विस्मय-विमुग्ध होकर सन्धि की प्रार्थना करता है। प्रसादजी का प्रत्येक आदर्श पात्र राष्ट्र-सेवा व्रती या राष्ट्र भक्त है। उनका चाणक्य आद्यंत राष्ट्रोत्थान हेतु सक्रिय एवं चिन्तित है। वह देख रहा है कि देश पर संकट के बादल छाए हुए हैं। राष्ट्र का बल बिखरा हुआ है। समग्र राष्ट्र द्वेष से जर्जर हो गया है। उसके शब्दों में—"आर्य जाति पतन के कगार पर खड़ी हुई एक धक्के की राह देख रही है......। प्रसादजी ने सर्वत्र ऐसे पात्रों की अवतारणा की है, जो राष्ट्रीय जीवन की विषम परिस्थितियों में राष्ट्र का योगक्षेम वहन करते हैं और अपने नेतृत्व द्वारा देश को पुनर्गठित करते हैं। चन्द्रगुप्त, सिंहरण, चाणक्य, स्कन्दगुप्त आदि ऐसे ही राष्ट्रोद्धारक पात्र हैं। राष्ट्रीयता से ओतप्रोत होकर ही प्रसादजी ने राष्ट्रद्रोहियों की भर्त्सना की है। शेरसिंह के शस्त्र समर्पण (लहर) में कवि ने प्रवंचकों की प्रतारणा का कटु प्रत्याख्यान किया है और उसे 'पचनद' का जीवित 'कलंक' घोषित किया है। 'चन्द्रगुप्त' को देशद्रोही आम्भीक की जो-यवन आक्रमणकारियों के पुरस्कृत स्वर्ण से पुलकित होकर आर्यावर्त को सुन्दरजी की शान्ति निद्रा में धीरे से अर्गला खोल देता है, लेखक ने सिंहरण के शब्दों में विगर्हणा की है। 'चन्द्रगुप्त' में भारत का प्रत्येक पात्र अलक्षेन्द्र और सिल्यूकस को पराभूत करने के लिए कटिबद्ध है। प्रसाद की यह कथा-योजना और यह चरित्र-परिकल्पना उनकी राष्ट्र-प्रियता का द्योतक है।

राष्ट्र प्रेम से ही प्रणोदित होकर प्रसादजी ने भारत के निसर्ग-सौंदर्य का मुक्त कंठ से गौरव-गान किया है। राष्ट्र्य वैभव का स्तवन एक भारतीय के मुँह से उच्चरित होकर उतना प्रभावोत्पादक नहीं हो सकता, जितना किसी विदेशी

द्वारा उच्चरित होकर प्रेरणाप्रद बनना है। सिंहल का राजकुमार धातुसेन भारत का चतुर्दिक भ्रमण करने के बाद गदगद हृदय से भारत की महिमा का बखान करता हुआ कहता है—

"भारत समग्र विश्व का है और सम्पूर्ण विश्व इसके प्रेम-पाश में आबद्ध है। अनादि काल से ज्ञान की, मानवता की ज्योति यह विकीर्ण कर रहा है। वसुन्धरा का हृदय भारत किस मूर्ख को प्यारा नहीं है? विश्व का सबसे ऊँचा शृंग इसके सिरहाने और सबसे गम्भीर तथा विशाल समुद्र इसके चरणों के नीचे है? (स्कन्दगुप्त-११६) राष्ट्रप्रेम के अन्तर्गत नैसर्गिक सौंदर्य, प्राकृतिक श्री सम्पन्नता, और सांस्कृतिक समृद्धि का उल्लेख अत्यंत उत्प्रेरक हुआ करता है। प्रसादजी ने विदेशी पात्रों से भारतीय प्राकृतिक वैभव का अधिकाधिक बखान कराया है ग्रीक कुमारी और यवन कन्या कार्नेलिया भारतीय वाङ्मय का चिंतन-मनन करती हुई भारतीयता की ओर इतनी आकर्षित हो जाती है कि इसे अपना ही देश मान बैठती है। वह विस्मय विमुग्ध होकर कल्हीं अन्तलीन क्षणों में भारत की वन्दना करती हुई कह उठती है—

'अरुण यह मधुमय देश हमारा।

जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ...।"

प्रस्तुत गीत प्रसादजी की राष्ट्रीय चेतना का परिचायक है। इस गीत द्वारा यही भाव झंकृत हो रहा है कि यह देश प्रकृति के व्यापक विभव का अधिकारण है। अनंत क्षितिज से सतरंगी आभा और रंग-बिरंगे पंखों वाले पक्षी शीतल मलयज समीर के सहारे निराधार, पवन की लहरियों के झोंकों में झूमते हुए भारत की ओर उसे अपना प्यारा नीड़ समझकर चले आ रहे हैं।' वस्तुतः यह कवि की उदात्त भावना है। यहाँ ऊपरी नारेबाजी और दिखावटी जयजयकार की "भट्ट भणन्त" नहीं है, बल्कि इसमें अन्तस्थल की गहराई है। यहाँ राष्ट्रीय कवि प्रसाद का कवि हृदय प्रस्फुटित हुआ है। भारत की महिमा का गायन करती हुई कार्नेलिया फिर कहती है " यह कितना निसर्ग सुन्दर है, कितना रमणीय है।" . यह स्वप्नों का देश, यह त्याग और ज्ञान का पालना, यह प्रेम की रंगभूमि-भारत भूमि क्या भुलाई जा

सकती है ?... – अन्य देश मनुष्यों की जन्मभूमि हैं–यह भारत मानवता की जन्मभूमि है।" अपनी इस भारत भक्ति के वशीभूत होकर अपने पिता से वह यही विनय करती है कि वे इस देश की सीमा से उसे बाहर ले जाएं, नहीं तो वह पागल हो जाएगी। सम्भवतः इस भारत–भक्ति के कारण ही उसे जाना नहीं पड़ता और एक दिन वह भारत की सम्राज्ञी बन जाती है प्रसादजी ने भारत और यूनान–इन दोनों संस्कृतियों के विनिमय द्वारा भारत के राष्ट्रीय गौरव की ओर अभिवृद्धि की है।

राष्ट्रीय महत्ता की प्राण–प्रतिष्ठा के लिए प्रसादजी ने भारतीय साहित्य, संस्कृति और दर्शन को बहुत प्रश्रय दिया है। भारतीय दर्शन का साक्षात्कार कराने के लिए उन्होंने कतिपय आत्मचेता या तत्त्वद्रष्टा मनीषियों की अवतारणा की है। 'चन्द्रगुप्त' का एक त्रिकालज्ञ, आत्मविस्मृत, निर्भय और निर्द्वन्द्व तपस्वी दाण्ड्यायन सिकन्दर को अपनी दिव्य अन्तरशक्ति से विस्मय–विमुग्ध कर देता है। इसी प्रकार 'जनमेजय का नागयज्ञ' में महर्षि वेद व्यास, 'अजातशत्रु' में महात्मा गौतम बुद्ध, 'विशाख' में प्रेमानन्द, 'ध्रुवस्वामिनी' में आचार्य वाराह मिहिर, 'इरावती' में ब्रह्मचारी (पतंजलि), 'करुणालय' में विश्वामित्र, 'कंकाल' में गोस्वामी कृष्णशरण और 'तितली' में बाबा रामनाथ आदि कई तत्वदर्शी सत्यनिष्ठ मनीषी हैं, जो राष्ट्रीय जन–जीवन में असत्य का निवारण करके सद्प्रवृत्तियों को जाग्रत करते हैं। प्रसादजी उद्धत पात्र भी राष्ट्रप्रेमी दिखाई देते हैं। 'गुण्डा' कहानी का नन्हकूसिंह उद्धत एवं मृत्युकामी होता हुआ भी स्वामिभक्ति तथा राष्ट्रभक्ति हेतु आत्मबलिदान करके अपने राष्ट्रप्रेम का परिचय देता है। इन सबकी अपेक्षा प्रसादजी की पात्रियाँ और भी गतिशील हैं–अलका, कल्याणी, जयमाला, विजया, कमला, मल्लिका, सरमा आदि राष्ट्रप्रेम की ज्वलंत प्रमाण हैं। 'पुरस्कार' की मधूलिका तो राष्ट्रप्रेम के सर्वोच्च ज्योति शिखर के रूप में संस्थित है। वह कोशल के सुपरिचित, 'राष्ट्रीय नियम' की मर्यादा–रक्षा हेतु अपने पितृ–पितामहों की भूमि समर्पित कर देती है उसका मूल्य नहीं स्वीकार करती और विपन्न जीवन बिताती है। सिंहमित्र की कन्या मधूलिका

राष्ट्रप्रेम के वशीभूत होकर अपने प्रेमी अरूण को बंदी बनाती है। राष्ट्र के हित मे वह बिना प्रतिफल और पुरस्कार प्राप्त किए आत्मोत्सर्ग कर देती है। भारत की प्रतिष्ठा और प्रभुसत्ता के लिए राष्ट्र के आन्तरिक संगठन पर प्रसादजी ने बहुत बल दिया है। उन्होंने आपत्तिकाल मे विभिन्न गणराज्यों के पारस्परिक कलह को विनाशकारी परिणाम दिखाकर अन्तप्रदेशीय सुधार का सत्प्रयास किया है। प्रसादजी ने राष्ट्र के उत्कर्ष काल के 'स्वर्णयुग' (गुप्तकाल) की झाँकी सजाकर अपकर्षकाल (हर्षकाल) तक की सारी घटनाएं यथाविधि सग्रथित की है और इस प्रकार उन्होंने भारतीय इतिहास का पुनर्लेखन किया है। अपने युग-जीवन में व्याप्त पारस्परिक भेद-बुद्धि, जातीय वैषम्य, वर्ण-भावना, आभिजात्य के विद्रोह और नारी-जीवन की अधोगति का पर्दाफाश करके उन्होंने समाज के कालिख को मेटने का यत्न किया है। प्रसाद साहित्य में राष्ट्रीय आदर्श का आवाहन और यथार्थ का जो अवबोध है, वह कवि की राष्ट्रभक्ति का ही द्योतक है। अपनी दार्शनिक निरपेक्षता या बौद्धिक तटस्थता के कारण वे भारतीय मगल प्रभात के अग्रगम्य चारण तो नहीं बने हैं, फिर भी उनकी रगरग में 'जननी जन्मभूमि' के प्रति अटूट निष्ठा, दृढ आस्था और असीम भक्ति की भावना है।

प्रसादजी का राष्ट्रप्रेम केवल आदर्शपरक, कल्पित या आरोपित ही नहीं है। वे 'कंकाल', 'तितली' आदि कथाकृतियों में राष्ट्रीय जीवन की दुर्दशा अकित करते हैं और नवनिर्माण का संदेश भी देते हैं। फिर भी राष्ट्र के दुख-दारिद्र्य के वर्णन की अपेक्षा उन्होंने राष्ट्र-महिमा को अधिक सशक्त किया है। उनके मतानुसार राष्ट्रीय जीवन के दुःख दैन्य का सतत दिग्दर्शन कराते रहने से हमारी दृष्टि लघुत्वगामी हो जाती है। राष्ट्रप्रेम के सम्यग् निर्वाह हेतु राष्ट्रीय गौरव की चेतना का ऊर्ध्वप्रेक्षण होना ही चाहिए। प्रसादजी की राष्ट्रीयता का अन्तरराष्ट्रीयता से कोई विरोध नहीं है। उनके कथनानुसार राष्ट्रीयता सहज रूप से अन्तर्राष्ट्रीयता मे परिणत हो जाती है—

'राष्ट्र चेतना काल परिधि में होतीलय है।' (कामायनी)

अस्तु सिद्ध है कि प्रसादजी का राष्ट्रप्रेम विश्वप्रेम का प्रपूरक और उनके अन्तर्जगत के स्वाभाविक विकास का परिणाम है। उनका राष्ट्रप्रेम सस्ती भावुकता का परिणाम नहीं है, बल्कि अतीत प्रियता, वीरपूजा, सांस्कृतिक निष्ठा और आत्मगौरव की भावना का द्योतक है। प्रलय की छाया, पेशोला की प्रतिध्वनि, शेरसिंह का शस्त्र समर्पण (लहर) आदि रचनाओं में उनके राष्ट्र प्रेम का उत्कृष्ट आदर्श प्राप्य है।

२. विश्व प्रेम:—

प्रसादजी का प्रेम सार्वदेशीय और सार्वकालिक है। उन्होंने समस्त मानवजाति को एक अजस्र, प्रेम की धारा में आप्लावित कराने का प्रयास किया है। कामायनीकार की यही मूल मंगलाशा रही है कि—

'शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय

समन्वय उसका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय ॥"(कामायनी–५९)

प्रसाद की समष्टि और व्यष्टि चेतना में एक अन्योन्याश्रित सम्बंध है। उनकी एक भावनात्मक प्रतिनिधि या प्रतीक मानी जयमाला कहती है—

'समष्टि से ही व्यष्टि बनती है। व्यक्तियों से ही जाति बनती है।

विश्व प्रेम, सर्वभूत–हित कामना परम धर्म है।" (स्कन्दगुप्त-७१)

प्रसादजी 'वसुधैव कुटुम्बकम' के हिमायती हैं—'हम अपना और कुटुम्बी हम केवल एक हमी हैं। इस विराट् विश्व को देश काल में विभक्त करना अशोभनीय है—'देश काल का आश्रय करते वे प्राणी चपल से हैं।' अपनी परिपूर्णता द्वारा ही 'विधाता की कल्याणी सृष्टि मंगलमय वृद्धि की ओर अग्रसर हो सकती है। विश्वबन्धुत्व की यह भावना प्रसाद–साहित्य में सर्वत्र परिलक्षित होती है। सम्पूर्ण विश्व को उन्होंने एक चितिमय सत्ता स्वीकार किया है—' चिति का विराट वपु मंगल यह सत्य सतत चिरसुंदर × चिति का स्वरूप यह नित्य जगत।" प्रसादजी के अनुसार समस्त मानव मात्र के प्रति जीव का सख्यत्व होना आवश्यक है। इस नवमानवतावाद द्वारा ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और विश्वमैत्री" की प्रतिष्ठा की जा सकती है। भगवान

गौतम के इन शब्दों में वस्तुत. प्रसादजी का ही विश्ववादी मन्तव्य मुखरित हुआ है—"विश्व के कल्याण के अग्रसर हो। असंख्य दुखी जीवों को हमारी सेवा की आवश्यकता है। इस दुख समुद्र में कूद पड़ो। यदि एक भी रोते हृदय को तुमने हँसा दिया तो सहस्रों स्वर्ग तुम्हारे अन्तर में विकसित होंगे, फिर तुमको पर दुख-कातरता में ही आनन्द मिलेगा। विश्व मैत्री हो जाएगी-विश्वभर अपना कुटुम्ब दिखाई पड़ेगा। उठो. असत्य माहैं तुम्हारे उद्योग से अट्टहास मे परिणत हो सकती है। (अजातशत्रु-१३७) प्रसादजी मनु की भांति आकर्षण से भरे विश्व को केवल अपना ही भोग्य' नहीं मानते। वे भोगवादियों और उपयोगितावादियों को सचेत करते हुए कहते हैं—

"अपने मे सब कुछ भर कैसे व्यक्ति विकास करेगा। यह एकांत स्वार्थ भीषण है अपना नाश करेगा।'

"……औरों को हँसते देखो मनु हँसो और सुख पाओ। अपने सुख को विस्तृत करलो सबको सुखी बनाओ।" कामायनी-८५) कामायनी का मनु व्यक्तिवादी है। उसकी आकांक्षा है—

'विश्व मे जो सरल सुंदर हो विभूति महान। सभी मेरी हों सभी करती रहें प्रतिदान। (कामायनी-१३२) किंतु अन्त में वह श्रद्धा की प्रेरणा से अपने आत्मिक सुख-दुख को व्यापक पृष्ठभूमि में देखने का अभिलाषी हो जाता है। लेखक के शब्दों मे-यह सहज मानव स्वभाव है—वह अपने सुख को विस्तृत करना चाहता है, और केवल अपने सुख से ही सुखी नहीं होता. कभी-कभी दूसरों को दुखी करके, अपमानित करके, अपने मन को सुख को प्रतिष्ठित करता है। (तितली-४७)

प्रसादजी के विश्व प्रेम मे लोकस्पर्श के साथ-साथ आध्यात्मिक साधना का भी पुट है। उनका आराध्य (प्रियतम) एक सर्वव्यापक विभु है, जो प्रेम रूप है। विमल इन्दु की विशाल किरणें उस अनादि, मायारूप प्रभु की सांसारिक लीला का प्रकाश प्रकट करती हैं। उसकी दया का प्रसार सागर में दिखाई देता है और उसका गान उत्तुंग तरंगों में सुनाई देता है। चन्द्रिका उस विश्वात्मा की स्मिति है, नदियों के कल्लोल में उसकी

तरस हँसी है। वह वस्तुतः प्रेमनिधि है—"प्रभो ? प्रेममय प्रकाश तुम हो ...।" (काननकुसुम-८) कवि अपने जीवन के प्रथम प्रभात मे उस 'प्रेम सुतार्थ' में मार्जन करता है जिससे उसका अन्तःकरण नवीन और हृदय शांत हो जाता है। उसकी मनोवृत्तियाँ सो जाती हैं तथा प्राण पपीहा 'आनन्द' की रट लगाने लगता है–फिर तो–" विश्व विमल आनन्द–भवन–सा बन जाता है।" (काननकुसुम-२२) कवि की आत्मस्वीकारोक्ति है कि इस तत्त्वबोध द्वारा ही उसे विश्वबोध प्राप्त होता है—

"स्मरण तुम्हारा जब होता, विश्वबोध हो जाता है ?" (चित्राधार)

प्रसादजी विश्व के नियमन मे आनन्द की स्थायी सत्ता मानते हैं। उनके मतानुसार–'कितना सुन्दर जीवन हो, यदि मनुष्य को इस बात का विश्वास हो जाय कि मानव–जीवन की मूल सत्ता में आनन्द है। (एकघूँट-१७) वस्तुतः विश्व की कामना का मूल रहस्य आनन्द ही है ? प्रसादजी संसार को दुःखमय नहीं स्वीकार करते। बौद्ध करुणा का प्रत्याख्यान करते हुए वे कहते हैं—'यदि दुःख का समुदय है तो उसका ध्वंस भी निश्चित है।' उनकी दृष्टि में दुःख [illegible] नाश का उपाय सोचना ही पुरुषार्थ नहीं है। दुःखवाद, प्रसादजी के मतानुसार विवेकवादियों (प्रतिबौद्धिकों) की देन है। वह जीवन का सत्य नहीं है। विश्वात्मा में आनन्दतत्त्व है, जो विश्वोत्तीर्ण होकर समरसीभूत हो जाता है। सब भेदभाव भुलाकर सुख दुःख को दृश्य बनाने से यह 'विश्वनीड' सत् चित् आनन्दस्वरूप बन जाता है–"जीवन वसुधा समतल है समरस है जो कि जहाँ है।" (कामायनी-२८८) योगेश्वर कृष्ण आर्यजाति के उत्कर्ष [illegible] साथ विश्व-मैत्री और कर्मसाम्य का सदुपदेश देते हुए अर्जुन से कहते हैं—

"इस पृथ्वी पर कहीं–कहीं अब तक मनुष्यों और पशुओं में भेद नहीं है। मनुष्य इसीलिए है कि वे पशु को भी मनुष्य बनावें। तात्पर्य यह है कि सारी पृथ्वी एक प्रेम की धारा [illegible] बहे और अनन्त जीवन लाभ करे।"

उनके कथनानुसार–'सृष्टि एक व्यापार है, जिसका दुःख न सुख उद्देश्य है। इस विषमतापूर्ण विश्व का निवारण अनिवार्य है। जैसे दिन का अप्रत्यक्ष होना रात्रि है,

आलोक का अभाव अन्धकार है। ये वस्तुतः विपक्षी द्वन्द्व हैं। मनुष्य इनकी ओर सचेष्ट है। अंधकार में दीप जलाता है, दुःख के भवर में आनन्द की उत्कट अभिलाषाएं करता है और जड़ता में स्पन्दन भरता है, अस्तु सर्वत्र शुद्ध चेतन है' चेतन सदैव स्फूर्त है। उस सत्ता का संहार सम्भव नहीं, लोप भले ही जाए। जड़ के रूप में यही चेतन प्रकाशित होता है। अखिल विश्व का परिपूर्ण सत्य है, अस्तु श्रीकृष्ण की घोषणा है कि असत्य का भ्रम दूर करना होगा, मानवता की घोषणा करनी होगी, सबको अपनी सत्ता में ले आना होगा। (जनमेजय का नागयज्ञ–१३) प्रसादजी के मतानुसार—

"विश्वमात्र एक अखण्ड व्यापार है। उसमें किसी का व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं है। परमात्मा के इस कार्यमय शरीर में किस अंश का बढ़ा हुआ और निरर्थक अंश लेकर कौन सी कमी पूरी करनी चाहिए-यह सब लोग नहीं जानते। इसीसे निजत्व और परकीयत्व के दुख का अनुमान होता है। विश्वमात्र को एक रूप में देखने से यह सब सरल हो जाता है, इस विषम व्यापार को सम करो। दुर्वृत्त प्राणियों का हटाया जाना ही अच्छे विचारों की रक्षा है। आत्मसत्ता प्रसारक संकुचित भावों को भस्म करो।" (जनमेजय का नागयज्ञ–१४, १५)

विश्ववादी धारणा के अन्तर्गत प्रसादजी का स्पष्ट मत है कि इस सुधामयी वसुधा के सारे कष्टों का कारण है-विषमता का विष-'जगतीतल का सारा क्रन्दन यह विषमयी विषमता।' (कामायनी–१२१) इसी वैषम्य के कारण 'विपुल विश्व घातक बनता है।' अतः सामरस्य ही विश्व मैत्री और साम्य का मूल आदर्श है। समस्त मानवता के प्रति करूणा और सहानुभूति व्यक्त करने की प्रेरणा जिस लोकजीवन में उपलब्ध होती है;वही आनन्दलोक है। भारतीय दर्शन का मूलाधार है 'सर्वेभवन्तु सुखिनः'। प्रसादजी की यही शुभाशंसा है—

'सब भेद भाव भुलवाकर सुख दुःख का दृश्य बनाता।
मानव कहरे यह मैं हूँ यह विश्व नीड़ बन जाता॥

विश्ववाद से प्रभावित कामायनीकार की अमोघ वाणी है—'सबकी समरसता

का प्रचार _ '। मानव वस्तुतः मननशील तथा श्रद्धामय कर्मो का कर्त्ता, आत्मचेता एवं नियता है। यह विश्ववादी भावना द्वारा ही मनः विश्रांति पा सकता है। मनु जीवन की विभिन्न पगडंडियों में भटकता हुआ अन्त में जिस आनन्द लोक में जाता है, वहां—न कोई शापित है, न तापित—सर्वत्र समतल, समरस और सत्य सतत चिर सुन्दर जीवन दिखाई देता है —

'शापित न यहां है कोई तापित प्राणी न यहां है।
जीवन वसुधा समतल है, समरस है जो कि जहां है।
अपने दुख—सुख से पुलकित यह मूर्त्त विश्व सचराचर,
चिति का विराट वपु मंगल यह सत्य सतत चिर सुन्दर।' (कामायनी-२८८)

विश्व प्रेम के विचारक्रम में प्रसादजी ने नीत्से आदि विकासवादियों के जीवन संघर्ष के गुणार्जन सिद्धांत का समर्थन करते हुए 'सर्वाइवल आफ दि फिटेस्ट' का उद्घोष किया है—'शक्तिशाली हो विजयी बनो विश्व में गूँज रहा जयगान।' (कामायनी-३७) अस्तित्व—संघर्ष की इस विचार पद्धति में भी आनन्द की योजना आवश्यक है और साथ ही आत्म-विश्वास की प्रतिष्ठा भी। विश्व की विराट शक्तियों में कुछ भी अनिष्टकारी नहीं है। जब विश्वात्मा सम्मिलित रूप से आत्मवान बन जाती है तो उसका भविष्य भी आशामय हो जाता है। इसी विचारनिष्ठा का बाह्य आवरण है—विश्वोपासना। प्रसादजी के मतानुसार 'विश्व का प्रारम्भिक उल्लासमय स्वरूप अतिवादी बौद्धिक विवेक के कारण अवसादग्रस्त हो गया है। बौद्धिक अतिरेक से ही भयोपासना मृत्युवाद, शासनादेश, युद्धरति और वर्ग संघर्ष का जन्म हुआ है, फलतः भ्रममय कोलाहल, पीड़नमय विकल प्रवर्तन महायन्त्र का आरम्भ हो गया है। आनन्द के अभाव में ही 'सतत संघर्ष विफलता कोलाहल का यहां राज है।' (कामायनी—२६६-२६७) अपराध और दण्ड का कारण है—यही सांसारिक संघर्ष। संघर्ष तिरोभाव आनन्द द्वारा ही सम्भव है। प्रसादजी के मतानुसार बाह्य विश्व में इन आनन्दवादी भावना का आधार है—सौन्दर्य। सौन्दर्य की बाह्याभिव्यक्ति है कला। आनन्द की तन्मय—कारिणी शक्ति है संगीत। इसी त्रिकोण के वैचारिक तारतम्य में प्रसादजी की विश्व—

प्रेममूलक आनन्द—भावना विकसित हुई है। इससे समग्र विश्व का सहज सामञ्जस्य सम्भव है। प्रसादजी के जागतिक आनन्द की भावना त्याग और ग्रहण की स्वतन्त्र शक्ति रखती है। उनकी मंगलाशा है—विश्व का उज्ज्वल पक्ष व धरा की भूमिका पर नृत्य करता सा दीख पड़े, सबको आलिंगित करके आत्मा का आनन्द स्वस्थ, शुद्ध और स्ववश रहे।' (इरावती—१०४। यह स्थिति आत्मविस्तार की चरम परिणति है। प्रसादजी का यह विश्व—प्रेम लोक करुणा का पर्याय है, जहां ममता तो है, पर माया नहीं, दया है पर मात्र मोह नहीं। यह मानवीय सम्वेदना की पवित्रतम स्थिति है। यही ईश्वरीय अवलम्ब है, अत कवि की विनय है—"करुणे। इस दुखपूर्ण धरती को अपनी क्रोड में चिरकालिक शान्ति द, विश्राम दे।" (राज्यश्री-५६)

दुख, सतप्त सांसारिक प्राणी के प्रति सहानुभूत होकर उनकी यही मंगल कामना है—"नाथ स्नेह की लता सींच दो, शांति जलदवर्षा कर दो। (जनमेजय का नागयज्ञ)

'दुख परितापित धरा को स्नेह-जल से सींच।
शीघ्र तृष्णा पाशा से मा' कष्ठ को निज खींच।
स्नानकर करुणा सरोवर, धुले तेरा कीच—
अब तो चेत न तू नीच॥" (राज्यश्री-५५)

इस विश्व प्रेम का प्रचार करने के लिए प्रसादजी ने अनेक विश्ववादी पात्रों की अवतारणा की है। 'विशाख' म साधु प्रेमानन्द एक ऐसा पात्र है, जो विश्व प्रेम की व्यापक सत्ता म ही अन्तर्लीन है। "प्रेम को मत्य का संसार में जगाना ही उसका कर्त्तव्य है। सार विश्व के सुख क साथ वह सुखी है। वह वस्तुत गीता के कर्मयोग के व्यावहारिक पक्ष को चरितार्थ कर रहा है—'जब तक सुख भोग कर चित उनस नहीं उपराम होता, मनुष्य पूर्ण वैराग्य नही पाता है।" वैराग्य स्वत अन्तरात्मा में विकसित होता है—तब उलझन की गाँठ सुलझ जाती है और अन्त करण आनन्दित हो जाता है—'हृदय कमल जब विकसित हो जाता है, तब चेतना बराबर आनन्द मकरन्द पान किया करती है, जिसमें नशा टूटने न पावे।' वस्तुत विराग का

अप अनुराग-हीनता नहीं, अपितु उसकी व्यापकता है। इस स्तर पर व्यक्तिनिष्ठ प्रेम सार्वजनीन हो जाता है और विश्व सत्ता के प्रत्येक अणु-परमाणु के प्रति निष्पक्ष होने लगता है इस स्थिति में शुद्ध बुद्धि का उदय होता है और व्यक्तिचेतना सत्कर्म में तल्लीन हो जाती है। प्रसादजी का अभिमत है कि विश्व में- जब तक शुद्ध बुद्धि का उदय न हो तब तक स्वार्थ प्रेरित होकर भी सत्कर्म करणीय है।" प्रेमानन्द इसी अमरवाणी को प्रसारित करता हुआ प्रेम को 'विश्वरूप' घोषित करता है—

'वह और कुछ नहीं विशाल विश्व रूप है।" (विशाख-३१)

प्रसादजी के मतानुसार समस्त प्राणियों में स्नेह की सहज परिव्याप्ति होने पर ही सुख की अनुभूति हो सकती है। वासवी के शब्दों में यहां जैसे प्रसादजी की ही सलक भरी स्वप्नाकांक्षा प्रकट हो रही है—

'भगवन्! क्या कभी वह भी दिन आवेगा जब विश्व भर में एक कुटुम्ब स्थापित हो जाएगा और मानवमात्र स्नेह से अपनी गृहस्थी सम्हाल लेंगे?

(अजातशत्रु-१३२)

प्रसादजी के अनुसार सांसारिक कष्टों का कारण यह है कि मनुष्य विश्व के शासन में निश्चेष्ट नहीं रहता। दुरभिलाषाएँ उसके उद्वेगजनक अन्तःकरण को व्यग्र करती रहती हैं, फिर भी यदि अपने आत्म का विस्मरण करके, अपने अस्तित्व को अनस्तित्व में मिलाकर वह सुखी रह सकता है। अपने हृदय के संचित प्रेम को विस्तार दे देने से विश्व ही प्रेमागार बन जाता है। विश्वप्रेम पूरित प्रसाद की मस्त अनुभूति है—"लता-वल्लरियों में, परस्पर अनुपलियों में परस्पर कितना स्नेह है। ये सब हिलते-डुलते और चलते-फिरते हुए भी मानो गले से गले लगे हुए हैं। यहां के तृण की एक प्रीति का आश्वासन पुचकार रहा है। स्नेह का दुलार, स्वार्थत्याग का प्यार सर्वत्र बिखर रहा है।' (जनमेजय का नागयज्ञ-६७) प्रसादजी की मान्यतानुसार अभेद भाव द्वारा ही आनन्द का चरम भाव स्थापित किया जा सकता है—'' बसे अभेद सागर में प्राणों का सृष्टिक्रम है।

सबमें घुलमिलकर रसमय रहता यह भाव चरम है। (कामायनी)

मानव जीवन की अभेदात्मक समष्टि–साधना द्वारा ही विश्वात्मा की प्राण प्रतिष्ठा की जा सकती है। विश्वात्मा के उत्थान मे हृतन्त्री में पवित्र पुण्य से सामगान की मीठे लहरा उठी है और चेतना 'अहमस्मि' के स्थान पर तत्वमसि' का पूर्णानुभव करने लगती है। उस विश्वरूप प्रेम का जयगान करते हुए प्रसादजी कहते हैं—'

"जय हो उसकी जिसने अपना विश्वरूप विस्तार किया।

'मानपरण का प्रेम नाम मे सबमे सरल प्रचार किया।

प्रेमानन्द पूर्ण जीवन को निराधार आधार दिया।।" (जनमजय का नागयज्ञ १०६)

विश्व प्रेम म समभाव आवश्यक है। मानवता के नाते उसका ध्येय विश्व के लिए आनन्द का उत्स खुल जाना है।' इसम समृति क साथ मानवीय आत्मा उदात्त हो जाती है। 'आनन्दातिरेक मे आत्मा का साकारता ग्रहण करना ही जीवन है।' (इरावती–१०४) इस सैद्धान्तिक कथन को चरितार्थ करने वाल पात्रों में प्रसाद की ममता (आकाशदीप) का आदर्श अनुकरणीय है, जो अपने शत्रु को भी (निस्सबल होते हुए भी) शरण देती है। वह प्राणिमात्र के प्रति उदात्त एव प्रशस्त प्रेम भाव से ओतप्रोत है। 'बैरागी' कहानी (आकाशदीप) का एक पात्र भी अनन्त काल तक प्राणियों की सेवा का सौभाग्य' मांगता है। यह लोक मगल का भाव है, जो जाति, धर्म राष्ट्र, सम्प्रदाय, भाषा आदि भेदों से परे है। प्रसाद के मत म यही आदर्श मानवता है। यह सेवा, सहायता और करुणा सासारिक स्नेह की उदार परिणति है। इसी मगलाशा को लक्ष्यकर कामायनी म यह महोच्चार प्रकट हुआ है–

"यह नीड मनोहर कृतियों का यह विश्व कम रग स्थल है।" (कामायनी–७५)

श्रद्धा इस विश्वे प्रेम की प्रेरक तत्त्व है। कवि ने उमे 'जगत की मगल कामना' और 'विश्व चेतना' कहा है। वह मनु को उत्तेजित करती हुई उसे सस्मृति का मूल रहस्य बनने को प्रेरित करती है, ताकि सारा विश्व इस भाव–सौरभ से भरजाय' और दुख–सुख के विकास के सत्य तथा भूमा के मधुमय दान स 'नित्य समरसता का अधिकार' उमड़ता हुआ दिखाई दे। यह महान विश्व' विषमता की पीडा स व्यस्त' होकर स्पन्दित हो रहा है कर्म और भोग–के स तुलन द्वारा ही आज 'जड का चेतन

आनन्द' प्राप्त हो सकता है जो कभी न कभी संसार को स्नेह की शीतलता प्रदान करेगा। प्रसादजी की यह अन्तर्प्रेरणा है—

'खोजो अपना प्रेम सुधाकर, , प्लावित हो भव शीतलहिम से' (झरना–३८)

प्रसाद का विश्व-प्रेम-दर्शन बड़ी व्यापक पृष्ठभूमि में कल्पित है। कवि के मत में 'विश्वात्मा ही सुन्दरतम है—उस आन्तरिक स्वर्ग में निष्काम होकर रमण करना चाहिए—आत्मसमर्पण करो उसी विश्वात्मा को पुलकित होकर।

प्रकृति मिला दो विश्व प्रेम म विश्व स्वयं ही ईश्वर है।" (प्रेमपथिक–२४)

प्रेम को स्नेह सौहार्द के रूप में विस्तृत करके विश्वव्यापी बनाना ही जीवन का श्रेय और प्रेम है। वास्तव में 'परिमित रूप नहीं जो व्यक्तिमात्र में बना रहे क्योंकि यही प्रभु का स्वरूप है (प्रेमपथिक)। प्रसाद का विश्व ही प्रियतम' है। प्रेम ही विश्व का चालक है। इस प्रियतममय विश्व में कहीं विरह नहीं है। व्यक्तिगत प्रेम में तो रूपजन्य मोह भी हो सकता है, पर विश्व-प्रेम उदार होता है स्पष्ट है कि प्रसादजी की विश्वप्रेम विषयक धारणा बड़ी विशद है। यह उनकी समष्टि-साधना का उत्कृष्ट रूप है।

'इ भक्त्युद्रेक—

प्रसादजी का प्रेम लोक तक ही सीमित नहीं है वह लोकोत्तर (दिव्य) प्रेम या भक्ति के स्तर तक पहुंचा है। उनकी प्रारंभिक कृतियों म तो यह भक्ति भावना प्रगल्भतापूर्वक प्रकट हुई है। प्रसाद की भक्ति प्राय आत्मनिवेदन, प्रणतिया विनय भाव से प्रेरित दिखाई देती है, जैसे —

'नमस्कार मेरा सदा पूरे विश्व गृहस्थ को (कानन कुसुम)

× हे नाथ, मेरे सारथी बन जाओ मानस-युद्ध में ।'

×'काट दो मे सारे दुख-द्वन्द्व ।' आदि।

यत्र-तत्र यह भक्ति भाव लोक कल्याण (राष्ट्रभक्ति) रूप म भी उभरा है। कवि ने इसी उद्देश्य से–'हे ईश। हे दयामय। इस देश को उबारो ।' × 'भारत को तू दे वह विक्रम, जिससे यह हो पूज्यतम' तथा — 'भूखो भारत तड़फ रहा है,

कहाँ चलोगे और कन्हैया, नरनारियाँ यहाँ पड़ी हैं कहाँ हरोगे पीर कन्हैया' आदि भाव व्यक्त किए हैं। इस ईशस्तुति द्वारा कवि ने अवतारवाद की पुष्टि की है, जैसे—'अवकर बुद्ध अवतार ले तुम सुखनिधि में सो गए' तथा–'उतारोगे अब कब भू भार', साथ ही इसी व्याज से कवि ने मानवतावाद को भी प्रस्तुत किया है। परम्परागत रूप से प्रसादजी ने भक्ति भाववश आत्मनिंदा भी की है, यथा–'हम मानते हम हैं अधम, दुष्कर्म के भी दास हैं....।' इस प्रकार प्रसाद-साहित्य में लोकोत्तरप्रेम (भक्ति) के विविध रूप दिखाई देते हैं।

इस भगवत्प्रेम की एक विशेषता यह है कि प्रसाद ने इसे रहस्य, दर्शन, बाल-सुलभ जिज्ञासा, समर्पण-भावना, लीला-वर्णन और आनंदोल्लासादि से अंकुरित कर दिया है। यह भी उल्लेखनीय है कि इस भक्ति को उन्होंने प्रेम रूप में परिणत कर लिया है कुछ पंक्तियाँ उद्धरणीय हैं—

'उस प्रेममय सर्वेश का सारा जगत् ही ज्ञाति है....।'

'जयति प्रेम निधि जिसकी करुणा नौका पार लगाती है....।'

×प्रभो, प्रेममय प्रकाश तुम हो...।' ×"जय जयति करुणासिन्धु'

×'कुंज में बंशी बजती है।' ×'बजा दो वेणु मनमोहन....।' ×अपने सुप्रेम रस का प्याला पिला दे मोहन।' आदि।

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि प्रसाद की ये प्रारम्भिक रचनाएं मधुरा भक्ति से प्रणोदित रही है ? धीरे-धीरे कवि ने इसे रागतत्त्व रूप में पर्यवसित कर दिया है। प्रसाद के प्रेम का यह एक उदात्तरूप है। यह स्वीकार्य है कि कवि यह सात्विक बुद्धि ही श्रद्धा रूप में प्रकट हुई है। वस्तुतः प्रसाद की अन्तश्चेतना का यह एक महत्वपूर्ण पक्ष है।

४. प्रकृति प्रेमः—

प्रकृति मानवीय भावनाओं की पीठिका है। सृष्टि की चिर सहचरी रूप में वह भाव और भावक को प्रेरित करती रहती है। उषा की अरुणिमा आभा, निशीथ की धवलस्नात चाँदनी, पावस की मनोरम छटा और बसंत का सौंदर्य विलास

वस्तुतः बड़ा सहृदय–संवेद्य है। इस प्रकृति–परिवेश में हृदय तन्त्री के नीरव तार रह-रहकर झंकृत हो उठते हैं। मन अपनी प्रकृत अनुभूति का आस्वाद चाहता है और हृदय अपनी अभिव्यक्ति। प्रसाद ने इन निसर्ग नियमों के आधार पर अपने वर्ण्य विषय को और भी निखार दिया है। उनके वैयक्तिक जीवन के प्रेमस्वप्नों का आरम्भ तभी होता है जब मधुराका मुस्कुरा रही थी जीवन की गोधूलि वेला छायी हुई थी। वह परिदृश्य कितना मधुर था, जब—

"हिलते द्रुम दल कल किसलय देती गलबाँह डाली,
फूलों का चुम्बन, छिड़ती मधुपों की तान निराली।
मुरली मुखरित होती थी मुकुलों के अधर विहँसते,
मकरन्द भार से दबकर श्रवणों में स्वर जा बसते।" (आँसू–२६)

यही सौन्दर्य–प्रेम के आकर्षण का मूल रहस्य है।' प्रसाद के वैयक्तिक जीवन के अनुरूप उनके पात्रों में भी प्रेम सृष्टि प्रकृति से उद्दीपन से होती है। इसी आधार पर लेखक ने देवपाल और कुमारी मञ्जा के प्रेम की परिकल्पना की है। यह प्रेमीयुग्म प्रकृति के प्रलोभन से प्रमत्त होकर प्रणय–प्रवृत्त हो जाता है। बाह्य प्रकृति उन्हें अपनी प्रेमोत्तेजना से अभिभूत कर लेती है। इसी प्रकार से और कई उदाहरण प्राप्य हैं।

प्रसाद की एक प्रिय पात्री 'नूरी' का हृदय प्रकृति से उत्तेजित हो उठता है–' ...यह एकान्त और वसन्त की नशीली रात आज ही उसके वसन्तपूर्ण जीवन की सार्थकता है।' (इन्द्रजाल–३५)

'कंकाल' के युवक मंगल (जो तारा के प्रति आकर्षित है) को प्रकृति प्रेमातुर कर देती है। (कंकाल–३४) वस्तुतः बाह्य प्रकृति उसकी अन्तर्प्रकृति को प्रभावित करती है।

और पुनः–सहयोगी जीवन की एक रात्रि को यही प्रकृति उन दोनों को कामातुर भी कर देती है।

'वसन्त की लहरीली समीर उसे पीठ से ढकेल रही थी। रोमांच हो रहा था।

जैसे कामना तरंगिनी में छोटी-छोटी लहरियाँ उठ रही थीं। प्रकृति प्रलोभन से सजी थी।' (कंकाल-४६)
यही प्रकृति अन्त में उन्हें वासना के वशीभूत भी कर देती है? (कंकाल-४७)
उपर्युक्त तीनों उद्धरण प्रकृति से प्रेरित प्रणय-सम्बन्ध की तीन विभिन्न स्थितियों के सूचक हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रसाद ने पारस्परिक प्रेम की प्रक्रिया प्रस्तुत करते हुए प्रकृति को एक प्रमुख प्रेमोत्तेजक उपकरण सिद्ध किया है। कामायनी में भी कवि ने मानव जीवन की अन्तंवृत्तियों का यही क्रम निरूपित किया है। श्रद्धा के प्रति मनु का जो राग व्यक्त हुआ और दोनों में वासना के जो संस्कार जाग्रत हुए, उनके मूल में कारणभूत है-यह उत्तेजक प्रकृति—

"सृष्टि हँसने लगी आँखों में खिला अनुराग,

. बरसता था मदिरकण सा स्वच्छ सतत अनत....। (कामायनी-८८, ९१)

इस प्रकृति प्रदत्त 'वासना' के उद्दीप्त होने पर मानव मन आवाकुल हो जाता है। इडा के प्रति जब मनु आकृष्ट होता है, तो उसके पीछे भी प्रकृति की प्रेरणा दिखाई देती है—

'ये सुख साधन और रुपहली रातों की शीतल छाया।

स्वर संचरित दिशाएँ, मन है उन्मद और शिथिल काया....।" (कामायनी-१८४)

यहाँ प्रकृति ही उद्दीपन रूप में मनु को असयत कर देती है। प्रकट है कि इन मनःस्थितियों की प्रेरक तत्त्व हैं-प्रकृति और तज्जनित परिस्थिति। 'राज्यश्री की मालिन सुरमा एवं देवगुप्त को भी यह प्रकृति अति महत्वाकांक्षी और अनुभूतिमयी बना देती है। फलत वे प्रेमोद्दीप्त हो उठते हैं। (राज्यश्री-१८)

इसी प्राकृतिक वातावरण से अभिभूत-होकर 'कंकाल' की वनबाला (गाला) के मन में भी तीव्र संवेदनाएँ जाग्रत हो जाती हैं और वह प्रणय प्रेरित हो जाती है। उसके शब्दों में 'यहाँ चाँदनी रात में बाँसुरी बजाने से गोपियों की आत्माएँ मचल उठती हैं।" (कंकाल-१९४)

प्रेम एवं सौंदर्य की अनुभूति तथा प्राकृतिक प्रलोभन का यह अन्तर्द्वन्द्व इरावती

में भी दिखाई देता है। श्यामखेरी इरावती चबूतरे पर खड़ी है "रात्रि का सौन्दर्य काम-योग के लिए मन को उत्तेजित कर रहा है, इस कौमुदी महोत्सव में वह चाँदनी की तरह शुभ्र अपने जीवन की वन्दना करती हुई नाचने लगती है। वह "नक्षत्र विजड़ित क्षुद्र आकाश खण्ड की तरह अपने को भूली हुई सी नाचने लगी" यह सौन्दर्य का उन्मुक्त उल्लास था — "चक्रम के नीचे शिप्रा, ऊपर आकाश में चन्द्र, शिप्रा के कुंजों में स्निग्धपवन सब स्तब्ध थे।" यही वातावरण और वय की विवशता है — "रात्रि का तृतीय प्रहर था और वह अपने जीवन के प्रथम प्रहर में थी।" (इरावती—१६)

वस्तुतः प्रसाद की प्रकृति विश्व के उल्लास का स्वर और आनन्द का संगीत है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' में वसन्त का आवाहन करता हुआ आस्तीक स्वयं से कहता है— "बुला लो, उस वसन्त को, उस जगती वसन्त को, जो महलों में मन को उदास कर देता है, जो मन में फूलों के महल बना देता है, जिसमें विश्व भर के सम्मिलन का उल्लास स्वतः उत्पन्न होता है....।" (जनमेजय का नागयज्ञ-७६)

वसंत का यह वैभव प्रकृति की पराकाष्ठा है और यही सौंदर्य-प्रेम का हेतु भी। प्रसाद के पात्र इसी प्रकृति-सौंदर्य से प्रमोदित होकर प्रेम क्रीड़ा में प्रवृत्त होते हैं। (जनमेजय का नागयज्ञ-८०)

कामना का प्राय—सभी पात्र, जैसे रानी कामना, विलास, लीला और विनोद प्राकृतिक सौंदर्य से उत्तेजित हो उठते हैं। (कामना-४२) इसी उत्तेजक प्रकृति से प्रेरित होकर कुमार विरुद्धक मल्लिका की प्रेम-स्मृतियों को दुहराता है और साहसिक हो जाता है। "तुम्हें मैंने अपने यौवन के पहले ग्रीष्म की अर्धरात्रि में आलोकपूर्ण नक्षत्र लोक से कोमल हीरक कुसुम के रूप में आते देखा।. वह कैसा इन्द्रजाल था-प्रभात का वह मनोहर स्वप्न था।" (अजातशत्रु-५५)

लेखक ने विरुद्धक के इस आत्मकथन द्वारा प्रकृति की प्रेम और सौन्दर्य का प्रबल प्रेरकतत्त्व घोषित किया है। प्रसादजी की धारणा है कि प्राकृतिक वैभव से सौंदर्य द्विगुणित हो जाता है और प्रेम की सुप्त अनुभूतियाँ जाग्रत हो जाती हैं। प्राकृतिक

सुषमा से प्रलोभित होकर पट मण्डप मे कामना रानी अपने अभावों को टटोलने लगती है और व्यग्र हो जाती है—"प्रकृति शांत है, हृदय चंचल है। आज चाँदनी का समुद्र बिछा हुआ है, मन मछली के समान तैर रहा है।" (कामना-६६) प्रकृति की उत्तेजना से कामना अमयतहो उठती है, क्योंकि, प्रसादजी के मतानुसार बाह्य प्रकृति अन्तर्प्रकृति को सदैव परिचालित करती है। प्रकृतिजन्य प्रभाव से प्रेरित होकर 'कामना' का एक पात्र सन्तोष भी हृदय खोलकर कह चलता है—"वह तमिसान थी......, प्रेम की गोधूली थी।......तुम्हें देखन की-पहचानने की चेष्टा की और तुम्हें कुहुक के रूप मे देखा।" (कामना-७१) ये निश्चय ही प्रकृति की उत्तेजक क्रिया हैं। प्रकृति के रूप-रहस्यो से प्रेरणा ग्रहण करके मानव हृदय पूर्णतः आत्म विस्मृत हो जाता है, 'अजातशत्रु' की उन्मादिनी श्यामा भयानक रात्रि में अपने प्रेमी विरुद्धक (शैलेन्द्र) से मिलने आती है, किन्तु प्रकृति की भयंकरता से भयभीत नहीं होती, क्योंकि—'रात्रि चाहे कितनी भयानक हो किन्तु प्रेममयी रमणी के हृदय से भयानक वह कदापि नहीं हो सकती .....।" (कामना-७१) प्रसादजी ने यहा अवसर मानवी प्रकृति के अनुरूप ही रौद्र प्रकृति की आयोजना की है। निशाभिसारिका श्यामा की साहसिकता इस अंधेरी रात के चित्रण द्वारा ही प्रकट होती है। प्रकृति का भयावह रूप भीषण प्रेम के लिए सहायक होता है और प्रकृति का रमणीय सौंदय सुकुमार प्रेम के लिए। प्रकृति के इस रमणीय सौंदर्य मे ऐसा नैसर्गिक आकर्षण होता है कि व्यक्ति कल्पनाशील और भाव-विभोर हो जाता है। यही नही प्रसाद का एक पागल पात्र प्रकृति की शोभा म अन्तर्लीन होकर विक्षिप्त सा हो जाता है। (प्रतिध्वनि-२०)

आत्मविस्मृति की अवस्था में प्रकृति भी खोई-खोई सी दिखाई देती है। 'अपराधी' कहानी में प्रसादजी ने आत्म-भावनाओ का आरोपण करके प्रकृति का मानवीकरण किया है। एक प्रणयिनी मालिन की बेसुध दशा का वर्णन करत हुए वे प्रतीक पद्धति द्वारा समस्त प्राकृतिक परिवेश का चित्रण किया है और साथ ही उसकी अन्तर्प्रकृति का उल्लेख भी।' (आकाशदीप-१३१)

स्पष्ट है कि प्रकृतिगत क्रियाओं से प्रेरित होकर ही मानव तदनुरूप चेष्टाएँ करता है, अर्थात् मानव और प्रकृति दोनों परस्पर पूरक एवं अन्योन्याश्रित हैं। मानवीय सृष्टि से सन्त्रस्त होकर व्यक्ति की अन्तश्चेतना इसी प्रकृति-अंचल की छाया में विश्राम पाती है। प्रसाद जी के शब्दों में—"कंगाल मनुष्य स्नेह के लिए क्यों भीख माँगता है? वह स्वयं नहीं करता, नहीं तो तृण विरुध तथा पशुपक्षी भी तो स्नेह करने के लिए प्रस्तुत हैं।" (आकाशदीप-१३३)

प्रकृति-प्रेम की इस उदात्त भावना से प्रेरित होकर संवेदनशील हृदय सौन्दर्य में आकृष्ट मग्न हो जाता है। वह चराचर जगत् के प्रेम तथा सौंदर्य से युक्त होकर चिरप्रेमी तथा चिर सुंदर बन जाता है। प्रसाद-साहित्य में कोई भी ऐसा पात्र नहीं, जो प्रकृति प्रेमी न हो और प्रकृति-दर्शन जिसे मानवीय सौंदर्य तथा प्रेम की ओर प्रेरित न करता हो। यहीं अर्थों में प्रकृति को 'उद्दीपन' कहा जा सकता है। यों अनेक स्थलों पर प्रकृति स्वयं प्रेम और सौन्दर्य का आलंबन है। वह प्रेम-सौन्दर्य का सर्वत्र दृष्टांत देती है। मानवीकृत प्रकृति से प्रेरित होकर ही उनके पात्र प्रमोद्दीप्त होते हैं। परिस्थिति-सर्जना में अनुकूल प्रकृति का रूपांकन बहुत उपयोगी होता है। प्रकृति प्रेमी पात्रों में आनुपातिक दृष्टि से प्रसाद के नारी पात्र अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। उनकी अनेक अल्हड़ नारियां प्रकृति से प्रलोभित होकर विमुग्ध हो जाती हैं। "कंकाल" की घंटी ब्रज मण्डल की प्रेम-माधुरी का स्मरण करती हुई कहती है—"..यहां के पत्ते-पत्ते में प्रेम भरा है। बंसी वाले की बंसी अब भी सेवा कुंज में आधीरात को बजती है।' (कंकाल-१०२)

'चन्द्रगुप्त' में सिंहरण की प्रणयिनी अलका पर्वतेश्वर की बन्दिनी होकर सिकन्दर की सहायता हेतु प्रतिश्रुत सम्राट के हृदय-परिवर्तन के लिए रूप और प्रकृति का ही उपयोग करती है। स्पष्ट है कि प्रकृति प्रेम-सौन्दर्य की विधायिका है। वह जड़ न होकर आद्या शक्ति की प्रतीक है, जिसे शिव-शक्ति कहा जा सकता है। कामायनी में यदि प्रकृति प्रलय सृष्टि और विप्लव की प्रेरक है। प्रेम और सौंदर्य के प्रेरक तत्त्व के रूप में तो प्रकृति सर्वोपरि है ही।

वस्तुत. प्रसाद का कवि-हृदय बाह्य प्रकृति के प्रति शाश्वत प्रेम, सौन्दर्य और आनन्द का अनुभव करता रहा है। प्रसाद का अन्तर्तम जब कार्यव्यग्र जीवन या सांसारिक कोलाहल से ऊबकर विक्षुब्ध हो उठता है तो उस समय कवि की अन्तश्चेतना प्रकृति की ओर मुड़ जाती है उसका अवचेतन मन कलरव कोलाहलपूर्ण पृथ्वी से दूर अनन्त निर्जन मे पहुँचकर विश्रान्ति पाने को तड़प उठता है —

'जिस निर्जन मे सागर लहरी, अम्बर के कानों में गहरी।

निश्चल प्रेम कथा कहती हो तज कोलाहल की अवनी रे....।' (लहर-१४)

इन पंक्तियों के आधार पर कुछ सुधी समालोचक प्रसाद-साहित्य में पलायनवाद की गन्ध पाते हैं, किन्तु देखा जाए तो यह पलायन न होकर कवि का प्रवृत्यात्मक प्रकृति-प्रेम है।

प्रसाद मूलतः प्रकृति प्रेमी है, क्योंकि उनके अनुसार प्रकृति मे राशि राशि सौन्दर्य है। उनके शब्दों मे—"प्रकृति सौंदर्य ईश्वरीय रचना का एक अद्भुत समूह है।" वस्तुतः ("चित्राधार-१२८) प्रकृति मे ही आनन्द का सन्निवेश है। जीवन यात्रा का थका हुआ पथिक मनु जिस आनन्द-लोक की ओर प्रयाण करता है, वहाँ की प्रकृति सर्व विभव सम्पन्न है—"चिर मिलित प्रकृति से पुलकित....।" (कामायनी-२८५) मनु के हृदय मे आशा और जिजीविषा का संचार करने वाली भी यही प्रकृति है। यही प्रलय, पुन-सृष्टि, आसक्ति और संघर्ष की हेतु है। प्रसाद की प्रकृति एक क्रियात्मक शक्ति है। इसी शक्ति-साधना द्वारा शिवत्व का साक्षात्कार होता है और आनन्द प्राप्त होता है। प्रसाद की कैलाशधाम वस्तुत) प्रकृति धाम ही है, जहाँ 'परिमल की बूँदों से सिंचित मधुर गंध बह रहा है, मुग्ध लहरों मे बिखरी हुई बल्लरियाँ नृत्य कर रहीं हैं। मदमाते मधुप नूपुर के समान गूँज रहे हैं। वसन्त का उन्मद मलयानिल फूलों की पंखुड़ियाँ खोल रहा है और इस भार से आक्रान्त मुकुल प्रफुल्लित होकर झालर की भाँति डालो-डालो पर हिल रहे हैं। यहां प्राकृतिक रमणीयता का दिव्य दृश्य है। वस्तुतः प्रसाद का कवि प्रकृति के परिवेश में अपना आत्म-विस्मरण करके, "सघन वन बल्लरियों के निचे" अपनी सुधबुध

खोकर 'कोमल कुसुमों की मधुर रात' का आनन्द लाभ करता रहा है। प्रसादजी ने संयोग के क्षणों में प्रकृति को सदैव उपस्थित किया है, जैसे— मधुराका मुस्कयाती थी पहले देखा जब तुमको (आँसू) प्रकृति का यह चित्ताकर्षक वातावरण प्रेम का सञ्चारीभाव है। वे सर्वत्र प्रकृति में सौंदर्य देखते हैं और उसके प्रति प्रेम प्रकट करते हैं। अपने (आत्मनिष्ठ) प्रकृति प्रेम के साथ-साथ उन्होंने अपने हर पात्र को प्रकृति प्रेमी सिद्ध किया है। उनके पात्र प्रकृति के पूजक हैं अतः वे प्रकृति के सुन्दर और भयंकर दोनों रूपों का स्तवन करते हैं। मानव-सौंदर्य और प्रेम की अपेक्षा उन्होंने प्रकृतिप्रेम तथा सौंदर्य को अधिक महत्ता प्रदान की है। प्रसाद ने प्रकृति के रमणीय दृश्यों की जैसी योजना की है-वैसी अन्यत्र अप्राप्य है। वस्तुतः प्रसाद का जीवन ही प्रकृति में केन्द्रित रहा है। उन्होंने अपने जीवन सत्य का उद्घाटन प्रकृति में छायाभास में किया है। कानन कुसुम- छाया, आँधी 'लहर, 'झरना आदि सारी रचनाओं में वे प्रकृति के विकासशील रूप सवारते रहे हैं। कवि की छायावृत्ति रहस्य-भावना सौंदर्य-सर्जना, राग चेतना तत्त्व दर्शन और सिसृक्षा वस्तुतः प्रकृति प्रेम का परिणाम है। उनकी समष्टिमूलक प्रेम-भावना का एकमेव अधिकरण है-प्रकृति।

स्पष्ट है कि प्रसादजी मूलतः एक प्रकृतिपरायण कवि हैं। प्रकृति के प्रति इस अगाध आकर्षण के मुख्य तीन कारण हैं—

१ राष्ट्र के भौतिक स्वरूप के प्रति आसक्ति

२ शैवदर्शन एवं तत्त्वचिन्तन का प्रभाव

३ व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की आकांक्षा

प्रसाद का प्रकृति प्रेम राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना से सम्बद्ध रहा है। उन्हें चूँकि राष्ट्र की धरती से लगाव रहा है, अतएव राष्ट्रीय परिवेश, उसके निसर्ग सौन्दर्य, अर्थात् इस भव्य प्रकृति को उन्होंने किसी न किसी ब्याज से प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त प्रकृति उनके दार्शनिक व्यक्तित्व की भी देन है। दर्शन में प्रकृति और पुरुष तथा विश्वरूपा, विश्वसुन्दरी चेतन पुरुष पुरातन' (कामायनी-२८८) प्रकृति

की जो मान्यता है, वह भी प्रसाद के प्रकृति-प्रेम का एक महत्त्वपूर्ण हेतु है। यही नहीं; प्रकृति को जड़ सामूहिकता का एक प्रतिगामी तत्त्व भी माना गया है। प्राय: व्यवस्था से सवस्त होकर व्यक्ति प्रकृति की ओर ही पलायन करता है। प्रसाद के काव्य में इसके स्पष्ट प्रमाण प्राप्त होते हैं। प्रकृति उन्हें ग्रात्म चेतना की ओर उत्प्रेरित करती दिखाई देती है। वस्तुत: प्रसादजी एक निसर्ग कवि है। प्रकृति उनके सौन्दर्यबोध की मूलाधार है। कवि को 'सृष्टि में सब कुछ है अभिराम' (झरना-२८) प्रतीत होता है। उन्होंने अपने एक प्रारम्भिक निबन्ध 'प्रकृति सौन्दर्य' में प्रकृति को 'विलक्षण ईश्वरीय देन' कहा है। (चित्राधार-१२५) प्रकृति को वह अद्भुततम की जन्मदात्री, मरकतवर्ण रंजित और मनोहारिणी स्वच्छटा से विभूषित मानते रहे हैं। प्रसादजी प्रकृति के रूप रंग पर तो मुग्ध हैं ही, इसके रहस्य-दर्शन से भी आन्दोलित हैं। वे प्रकृति को 'विश्वात्मा की छाया' (काव्य और कला तथा अन्य निबंध-१४८) घोषित करते हैं, उसे 'परम रमणीय अखिल ऐश्वर्य भरी' (कामायनी-१७१) मानते हैं और प्रकृतिगत नूतनता के प्रति आकृष्ट दिखाई देते हैं।

प्रसाद का कवि पार्वत्य सौन्दर्य के प्रति बहुत अभिभूत है। उन्होंने यथावसर हिमालय का स्मरण अवश्य किया है। और उसे 'विश्वकल्पना सा ऊँचा' 'मणिरत्नों का निधान', 'नीरवता की विमल अनुभूति', 'विश्व मौन, गौरव महत्त्व का प्रतिनिधि' आदि कई विशेषण दिए हैं। प्रसाद ने हिमालयी प्रकृति की कई स्वच्छवियों ऋतुओं और स्थितियों को प्रत्यंकित किया है, विशेषत: हिमालयी सूर्योदय और सूर्यास्त के दृश्य तो उन्हें बहुत ही प्रिय है। कुछ उद्धरण विचारणीय हैं —

'हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार...।' (स्कन्दगुप्त-१५०)

×'नवकोमल आलोक बिखरता हिम संसृति पर....।' (कामायनी-२३)

'सन्ध्या घनमाला की सुन्दर, पहने हुए तुषार किरीट, (कामायनी-३०) आदि।

कवि को पीले पुखराज की सी हिमानी-छटा अर्थात् हिमवती पाषाणी प्रकृति, घन मालाओं का शृंगार', उसका विराट धवल आकार आदि रूपप्रिय हैं प्रसाद ने हिमालय के 'सुधासनात देवदारु निकुञ्ज गह्वरों' (कामायनी-८८) स्पर्शी रातों को

छाया तथा पावस, वसंत और शरद–प्रकृति की लोकोत्तर शोभा की अवतारणा करके अपनी सहजात सौन्दर्यासक्ति व्यक्त की है।

हिमालय के साथ-साथ प्रसाद ने 'प्रशान्त महा गम्भीर जलधि', उसकी 'लहरों के भीषण हास', 'सागर के सूर्योदयकालीन दृश्य, सिन्धु-तरंगों के कलकल नाद और उसकी विविध भंगिमाओं का सूक्ष्म सौन्दर्यांकन किया है। (कामायनी–१४,४६) कामायनीकार ने समुद्री प्रकृति के कई रूप वर्णित किए हैं। उसने जहां प्रलय सिन्धु के विराट आलोडन और सबल तरंगों के उद्वेलन को सशब्द किया है, वहीं पुनस्सृष्टि-कालीन 'सर्मान्त कमलिनि' का भी उल्लेख किया है। हां कवि को 'उत्ताल जलधिवेला' (आंसू–६०) अपेक्षाकृत अधिक प्रिय है।

समुद्र के अतिरिक्त सर-सरिता और तरंगों के वर्णन में भी प्रसाद की मनोवृत्ति विशेषतः रमी है। उन्हें 'मधु लोल लहरें', सुप्त वात, शीतल निर्वातनिष्कम्प पारदर्शी नवनील मुकुर सदृश जलराशि, 'मधुर तरल जल मण्डल', (लहर–४८) लहरों का नर्तन', (कामायनी–२६४) 'सरिता की निस्तरंग धारा' (कामायनी–१६६) आदि रूप प्रिय हैं। यह उल्लेखनीय है कि प्रसादजी ने अपनी सुस्थिर मानसतरंग के अनुकूल मन्दवेलित लहरों को ही अधिक प्रश्रय दिया है, जैसे —

'हिम शीतल लहरों का रह रह कूलों से टकराते जाना....।' (कामायनी–१६७)

× धीरे-धीरे लहरों का दल, तट से टकरा होता ओमल...।(कामायनी–२४६) आदि।

यही नहीं, निर्झर के अविरल प्रवाह और उसके कलकल नाद के प्रति भी प्रसाद का कवि हृदय आकृष्ट है। उन्होंने यथासन्दर्भ 'शीतल झर झर निर्झर' (कामायनी–२४८) का भाव विमुग्ध रूपांकन किया है।

भू-सौन्दर्य के साथ ही अन्तरिक्ष के दिव्य सौन्दर्य की ओर भी प्रसादजी भावोन्मुख हैं। उन्होंने 'तारक खचित नीलपट परिधान (लहर–६०) वाली श्यामा सृष्टि', कोमल कुसुमों की मधुर रात' (लहर–२४) 'जगमग तारा मण्डित अनन्त (कामायनी–२४६। आदि की मनोमयी सृष्टि की है। प्रसाद ने 'धवल मनोहर चन्द्रबिम्ब' (कामायनी–३४)

मानस की लहरों पर बिछलती हुई नवल चन्द्रिका (कामायनी-१०१) रागरंजित से उड़ता सुमन पराग (कामायनी-८८) व्यस्त चन्द्रिका निधि (कामायनी-३५) 'मदिर माधव यामिनी' (कामायनी-८६) कौमुदी का स्वप्न शासन (कामायनी-८८) विमल राका मूर्ति (कामायनी-६१) 'व्योम शैल से गिरती हुई चन्द्रिका की धारा (कानना-२८) 'निर्झर से मग्न माधवी कुंज', आंसू-१८) शीतल शुभ्र शरद शशि' (स्कन्दगुप्त-५२) 'छवि मतवाली चांदनी रात' (चन्द्रगुप्त-१५५) आदि कार्यों की भाव भीनी रूप-रचना की है। ज्योत्स्ना के प्रति व्यक्त यह आनुशासिक महत्त्व प्रसाद की सौन्दर्य-सर्जना का एक अविस्मरणीय पक्ष है।

सौरमण्डल के प्रति रूपासक्त होने के कारण प्रसादजी आकाश के निरभ्र नील विकास, उसमें जाज्वल्यमान नक्षत्र जाल विशेषतः एकाकी नक्षत्र के सौन्दर्याङ्कन की ओर तत्पर दिखाई देते हैं। उन्होंने कामायनी में 'कीर्ति किरण रंजित तारक' को 'तम का सुन्दरतम रहस्य', (कामायनी-३७) 'स्वपित विश्व का साहित्यक शीतल बिन्दु', 'आतप तापित जीवन की सुख शान्तिमयी छाया' आदि विशेषण दिए हैं और 'तारों से भरी काली रजनी के नीलाकाश को फूलों से गुंथी, हुई श्यामा रजनी की सुन्दर वेणी' (चन्द्र गुप्त-१४६) 'रजनी की टूटी कंचन माला (कंकाल-२६१) स्वर्गंगाकी धारा' (आंसू-५६) मगल नील बिखरती मणिराजी', (कामायनी-४०) 'तारो के फूल' (कामायनी-६५, झरना-६६) मगलदीप' (कामायनी-६१) 'झरते कुसुम स्तबक', (कामायनी-२३३) 'सरिता पर बिम्बित नक्षत्रलोक' आदि का मनोमुग्धकारी चित्रण किया है— ·

'उभरे-उभरे तारक झलमल प्रतिबिम्बित सरिता वक्षस्थल
कुछ झलमल सुन्दर तारक दल... ।' (कामायनी-२३४)

प्रकृति के विभिन्न कालखण्डों में सूर्योदय, सूर्यास्त और निशीथ के दृश्य प्रसादजी को विशेष प्रिय हैं। उन्होंने 'ऊषा की सजल गुलाली' (कामायनी-७५) 'नवकोमल आलोक' (कामायनी-२१) 'अरुणोदय के रस रंग', - (कामायनी-७७) 'भिलमिल हेमारश्मि' (कामायनी-७८) 'आलोक रश्मि बुना उषा के अंचल, सुनहले पराग ने

मरे कमल के मधुपराग' (कामायनी–१६६) आदि दृश्यों का सर्वांगीण चित्रण किया है और उनके प्रति तन्मयता व्यक्त की है, जैसे —

'हेम कुम्भ ले उषा सवेरे भरती ढुलकाती सुख मेरे ।' (चन्द्रगुप्त–१००)

×'बैठ गुलाबी विजन उषा में ।' (चन्द्रगुप्त–१८६)

×प्राची में फैला मधुपराग । (कामायनी–१६०) आदि । इन उक्तियों में अरुणोदयकालीन श्री सूर्य के प्रति कवि का भाव–तादात्म्य दिखाई देता है, जो उसके प्रकृति–सौन्दर्य की दृष्टि से अतुलनीय है ।

गोधूलि, विशेषत 'धूमर सन्ध्या', 'गोधूली की धूसर छवि' (झरना–३४–३५) 'गोधूली के धूमिलपट' (कामायनी–६७) 'निजन बेला रागमयी सन्ध्या' (लहर–५६) आदि के कई चित्र प्रसाद–साहित्य म प्राप्य हैं, साथ ही कई दृश्य भी जैसे —

'गिर रहा निस्तेज गोलक जलधि में असहाय ।' (कामायनी–८१)

'हम पथा दिवस पीला पीला ।' (कामायनी–१४४)

'मधुर माधवी सन्ध्या में जब रागारुण रवि होता अस्त...।' (लहर— ४४) आदि ।

स्पष्टत प्रसाद की सन्ध्या म की मधारुण ज्योति उसकी कोमल काया और उसकी समग्र पार्श्वछवि प्रिय है । रात्रि की कालिमा—'तम जलनिधि', 'तमस के अलक जाल' (कामायनी–२५२) 'म धकार के अट्टहास, तिमिर उदधि' (आँसू–४१) तथा स्तर स्तर जमती पीन' तमिस्रा एव उसके 'काले शासनचक्र का मन्थन स्फुट सकेत देकर कवि ने प्रकृति के सर्वस्व को आत्मसात किया है ।

ऋतु–सौन्दय के प्रति भी प्रसादजी बहुत सचेष्ट रहे हैं । उन्होंने किसी न किसी व्याज से षडऋतु और बारहमासे का वर्णन किया है । ऋतुचक्र के अन्तगत उन्होंने शरद को वरीयता दी है और यहीं से नवसृष्टि का समारम्भ माना है—'वर्षा बीती हुआ सृष्टि में शरद विकास नए सिर से ।' (कामायनी–२३)

प्रसाद के अनुसार शरद का नव आलोक', हिम समृति'–हिमाच्छादित प्रकृति और शुभ्र शारदीय ज्योत्स्ना बड़ी नयनाभिराम है । उन्ह 'शरद का सुन्दर नीलाकाश' (झरना–

२३) शांत, सुस्थिर, स्वच्छ 'शरद प्रसन्न नदी' (आँसू-७१) आदि दृश्य बहुत प्रिय हैं, अस्तु शारदीय सौन्दर्य का रूपांकन उन्होंने बड़ी तन्मयता के साथ किया है। हेमंत और शिशिर [illegible] प्रति प्रसादजी ने विशेष रुचि प्रदर्शित नहीं की है, पर 'छायापथ के नवतुषार' (कामायनी-८) और हिमशीतल जड़ता (दोस्ताविलय) का उल्लेख अवश्य किया है। उनका कवि तुहिन बिन्दुओं मुख्यतः 'नीहार कलिकाओं की प्रभात लीला' (स्कन्दगुप्त-१२६) तथा 'शिशिरकणों से सिक्त पवन' (अजातशत्रु-१२३) के प्रति विशेष आकृष्ट है। वासन्तिक सौन्दर्य के प्रति भी प्रसादजी सचेत हैं। उन्होंने कोकिल की काकली, 'परिमल से बोझिल मलयानिल', भ्रमर गुंजार, नवल पत्र-पुष्पाभ्कृत वनस्पति जगत आदि को 'ऋतुपति का कुसुमोत्सव', 'अंतरिक्ष का मधु उत्सव', 'ऋतुपति का हिल्लोल' आदि संज्ञाएँ दी हैं और जीवन वन के मधुमय वसंत' (कामायनी-१०१) का स्वागत किया है। ग्रीष्मऋतु प्रसाद के सौन्दर्य-संस्कारों के अनुकूल नहीं रही है। उन्होंने प्रतिकूल परिस्थितियों के सन्दर्भ में 'लू से झुलसाने वाली दोपहर' (लहर-६६) का स्मरण किया है, हाँ ग्रीष्म की अर्धरात्रि उन्हें अवश्य प्रिय रही है। पावस-प्रकृति के अन्तर्गत प्रसादजी ने 'झंझा झकोर गर्जन' बिजली, नीरदमाला' (आँसू-१५) 'तमाल श्यामल नीरद', (झरना-२४) 'सुरधनुरंजित नव जलधर' (लहर-२७) 'सावनघन, सुरधनु माला और चपला से गहने जलधर', (कामायनी-२५८) मेघों के वर्णाडम्बर, (कामायनी-७५) झिलमिल इन्द्रचाप (कामायनी-१३६) नीलनीहित जलद (चन्द्रगुप्त-२४) एवं सद्यात, (कामायनी-१७, १५८) दादुर, झिल्लीरव आदि को रूपायित कर प्रकृति का सर्वांगीण सौन्दर्यांकन किया है।

प्रकृति के व्यापक परिवेश में प्रसादजी ने पशुपक्षियों, विविध वन्य जीवों और वनस्पतियों के रूपांकन में भी सुरुचि प्रदर्शित की है। उन्होंने कोकिल, चातक, आदि पक्षियों, मृग, वृषभ, आदि पशुओं पारिजात, यूथिका, शतदल, शेफाली, 'शिरीष' 'कुरवक' किंशुक, मालती, रजनी गंधा, मल्लिका, देवदारु, कदम्ब, जपाकुसुम आदि का उल्लेख कर प्रकृति के समग्र सौन्दर्य को उपस्थापित किया है।

स्पष्ट है कि प्रसादजी ने प्रकृति को अपनी परिपूर्णता में ग्रहण किया है।

उन्होंने प्रकृति के समवेत सौन्दर्य का साक्षात्कार किया है। प्रसाद की प्रकृति अनुभूति का विषय है। उसमे कौतुकी दर्शन न होकर समवेदना का सत्य है। प्रकृति, उनके अनुसार आध्यात्मिक मनोन्नयन की साधन है, वह सौन्दर्यबोध की अवलम्बन है और मूल उद्दीपन भी। उन्होंने प्रकृति का मानवीकरण करके उसके सभी रूपों को न्यूनाधिक रूप में आत्मसात किया है। प्रकृति उनकी मात्र मुद्रा नहीं, अपितु जीवन का संस्कार है, अस्तु वे नाम गणना न करके समारम्भाव स्थापित करते दिखाई देते हैं। वस्तुतः यह सर्व सुन्दरी प्रकृति ही प्रसाद के प्रेम-दर्शन की मूलाधिष्ठान और समग्र जीवन सौन्दर्य की मूल स्रोत है। निश्चय ही यह उनकी अन्तश्चेतना का एक मुस्कान प्रदेश है।



• प्रसाद का प्रेम दर्शन •

प्रसाद साहित्य में प्रेम के विभिन्न पक्षों के साथ साथ प्रेम विषयक सिद्धांतों की भी भरमार है। ये प्रेम सिद्धांत उनके प्रेमदर्शन (चिन्तामणी भाग सब) के प्रामाणिक साक्ष्य हैं। इन्हें संकलित करके प्रसाद के प्रेमादर्श को सूत्रबद्ध किया जा सकता है।

१. प्रेम: एक स्वर्गिक उल्लास —

मानव का स्नेह-सबलित जीवन प्रसाद की दृष्टि में स्वर्गिक उल्लास और आत्मिक आह्लाद से परिपूर्ण रहता है। उनके कथनानुसार-'जहाँ व्यक्ति की सुन्दर कल्पना आदर्श की नीड बनाकर विश्राम करती है, वही स्वर्ग है। वही विहार का, वही प्रेम करने का स्थल है, और वह इसी लोक में मिलता है।' इस अतिशय उदार दृष्टिकोण के कारण कुछ समालोचकों ने उन्हें मात्र स्वच्छन्दतावादी (रोमैंटिक) घोषित कर दिया है। किन्तु देखा जाए तो प्रसाद न जीवन के मुक्त प्रेम को ऐन्द्रिय जगत से परे लोक जीवन मे घटित किया है। वस्तुतः प्रसाद ने प्रेम-स्वातन्त्र्य को स्वीकार कर उसे सामाजिक विधि-निषेधों मे पर्यवसित कर देने का उपक्रम किया है, जो उनके औदार्य और लोक-संग्रही दृष्टि का साक्ष्य है।

२. प्रेम: एक निरीह आत्म-समर्पण —

प्रसादजी ने अपने आदर्श प्रेमीपात्रों के मूक बलिदान द्वारा प्रेम के मार्मोत्कर्ष की सृष्टि की है। उनकी एक मूक पात्री मालविका चन्द्रगुप्त के शौर्य और सौन्दर्य के प्रति प्रेमार्पित होकर अपना मूक बलिदान कर देती है। चन्द्रगुप्त के साथ वार्तालाप मे भी उसकी निरीह भावनाएं प्रकट हुई हैं—"निरीह कुसुमों पर दोषारोपण क्यों। उनका काम है-सौरभ बिखेरना। यह उनका मुक्तदान है, उसे चाहे भ्रमर ले या पवन।" मालविका पूर्ण निष्काम है। उसकी अनुभूतियाँ मुखर होकर भी मौन हैं। जब उसका

हृदय मचलता है, वह हृदय की कोमल कल्पनाओं को सुला देती है। मालविका निःस्वार्थ, निस्पृह भक्त की तरह अपने प्रिय की मोहनमूर्ति का ध्यान करती है। उसकी कोई ईहा शेष नहीं है। वह एक ऐसी मुग्धा के रूप में दिखाई देती है, जो प्रेम के वनिज व्यापार से नितांत अनभिज्ञ है। चन्द्रगुप्त के प्रति उसके हृदय में किंचित रूपासक्ति भी है, किंतु उसमें केवल उत्सर्ग का ही भाव है। मालविका जैसी निरीह एवं मूक प्रेम पात्री हिंदी साहित्य में महत्त्वपूर्ण है। उसका यह सूक्ष्म, किन्तु सुदृढ़ व्यक्तित्व अपने न्यून पावत्व के अनन्तर भी निरीह आत्मसमर्पण के कारण बड़ा प्रभावोत्पादक है। मालविका प्रसादजी के प्रमार्पण सिद्धांत की प्रतीक है। उसका *बलिदान नारी जीवन का चिर सत्य है। चन्द्रगुप्त के राज्याभिषेक के बाद* शयनागार में उसकी प्राणरक्षा करने के लिए वह आत्मवध हेतु प्रस्तुत हो जाती है और कहती है—

"जाओ प्रियतम, सुखी जीवन बिताने के लिए, और मैं रहती हूं चिर दुखी जीवन का अन्त करने के लिए....!"

कितनी निरीहता है इस पंक्ति में ? कितना समर्पण भाव है उसके भावुक हृदय में। जीवन के अन्तिम क्षणों में उसकी भावनाएं पुष्पित होती अवश्य हैं, किन्तु तब उसे कोई प्रतिफल नहीं मिल पाता। यह प्रसाद के प्रेमादर्श का उत्कृष्ट रूप है। कुछ विद्वानों के मतानुसार प्रसादजी ने मालविका का यह मूक विसर्जन दिखाकर प्रणय का न्यायोचित निर्वाह नहीं किया है। उसके चरित्र, उसकी भावुकता को और उसकी मदोन्मत्तता को पर्याप्त विकास न देकर सहसा उसमें बलिदान करवा देना यद्यपि बहुत कुछ आकस्मिक लगता है, फिर भी उन्होंने यह निरीह आत्मसमर्पण दिखाकर प्रणय व्यापार का एक उत्कृष्ट आदर्श उपस्थित किया है, जो इस आकस्मिकता के कारण ही मार्मिक बन सका है।

प्रसाद की प्रारंभिक कथाओं में हम प्रेम-बलिदान के और भी कई उदाहरण उपलब्ध हैं। 'छाया' का रसियाबालम अपनी प्रेम-परीक्षा देने के लिए पत्थरों को काटकर धारा निकालता है, किन्तु प्रेम से हतोत्साह होकर विषपान कर लेता है। उसके प्राणो-

परान्त राजकुमारी भी विषपान करके मृत्यु को वरण करती है। यह उपयोगी प्रेम बलिदान भाव का एक सुन्दर उदाहरण है। इसीप्रकार का निरीह आत्म समर्पण चन्द्रगुप्त की कल्याणी द्वारा भी प्रस्तुत किया गया है। राजनन्दिनी कल्याणी महाराजनन्द की मृत्यु के उपरान्त पर्वतेश्वर से प्रतिशोध लेना चाहती है। उसका विचार है कि चन्द्रगुप्त स्वयं यदि उसके पिता का हत्यारा नहीं तो उस विद्रोही समुदाय का अग्रणी सेनानी अवश्य है, पर वह बरबस 'नक्षत्र विलास सी चन्द्रगुप्त की छवि' पर मनोमुग्ध हो जाती है। अपने भावुकक्षणों में वह उसी को स्मृति में लीन रहती है। उसके हृदय में भावना और कर्त्तव्य का द्वन्द्व है। एक ओर वह अपने पितृहता चन्द्रगुप्त के प्रति घृणा का भाव भी रखती है, दूसरी ओर अज्ञात रूप से उसके प्रति आकृष्ट भी रहती है। ऐसे ही भावाकुलक्षणों में उसके प्रणय-संगीत में उत्तेजित होकर पर्वतेश्वर उससे छल प्रणय निवेदन करता है और तब कल्याणी उसका वध कर देती है। चन्द्रगुप्त के उपस्थित होने पर वह बड़े आत्मबल से कहती है—

"कल्याणी ने वरण किया था केवल एक पुरुष को, वह था चन्द्रगुप्त। उस प्रणय को, प्रेमपीड़ा को, मैं पैरों से कुचलकर खड़ी रही।" (चन्द्रगुप्त-१७६) इन्हीं शब्दों के साथ वह आत्महत्या भी कर लेती है। चन्द्रगुप्त इस निरीह आत्मत्याग से अभिभूत हो जाता है।

प्रसादजी ने प्रेम को प्रायः मौन रहने का निर्देश किया है। इसकी एक प्रतीक पात्री है-मदाकिनी। ध्रुवस्वामिनी की सखी मन्दाकिनी कुमार चन्द्रगुप्त की 'त्याग-शील मूर्ति की अनुरागिनी' है। कुमार के प्रति मोहासक्त होकर उसका हृदय उमरता है, किंतु कर्त्तव्य उसे पीछे ठेलता है। अन्ततः हृदय को कठोर करके अपना कर्त्तव्य करने के लिए उसे रुकना पड़ता है। देवसेना का मूकसमर्पण भी बड़ा मार्मिक है। हृदय में हलचल, आँखों में प्रणयकलह और मन में अनुराग के सपने होने पर भी लौकिक कर्त्तव्य के सामने अपनी भावना को दबा देना उसके चरित्र की महत्ता है। युवराज स्कन्दगुप्त को छोड़कर कोई अन्य न उसके जीवन में प्रवेश कर सका है और न करेगा। पर वह स्वार्थ का विसर्जन करके उसके जीवन से हट जाती है। प्रसादजी

साहित्य में इस प्रकार के पात्रों की कमी नहीं है यह भी उल्लेखनीय है कि उन्होंने ऐसे मूक बलिदान और निरीह आत्मसमर्पण के लिए प्रायः नारी पात्रों को ही चुना है। बालवती के 'प्रणय', 'गुण्डा' कहानी के नन्हकूसिंह, 'स्कन्दगुप्त' के मातृगुप्त आदि के अतिरिक्त उनके आदर्श प्रेमी पात्रों में अधिकतर नारी पात्र ही हैं, जैसे—श्रद्धा, देवसेना, मल्लिका मालविका, मधूलिका, मन्दाकिनी, चम्पा, तितली, घटी, तारा, कल्याणी आदि। वस्तुतः यह नारी का एक प्रकृति धर्म है।

३. प्रेम के एकाधिकार और निष्ठाः—

प्रेम एकाधिकार का भूखा होता है। आदर्श प्रेम में यों तो उपयोगी सम्बन्ध रहता है किंतु प्रसाद के चरित्रों में एकान्त प्रेम ही अधिक है। उनके प्रेमीपात्र जहाँ अपने प्रिय में चूड़ान्त मग्न दिखते हैं, वहाँ प्रिय कुछ अन्यमनस्क (उदासीन) सा रहता है। किन्तु ये प्रेमी पात्र प्रतिदान की आशा बिना, अपने कर्त्तव्य में तल्लीन रहते हैं। अन्ततः इस एकनिष्ठ प्रीति में अपरपक्ष भी स्नेहाभिभूत हो जाता है। मन की उच्च, लालसाएं यहीं प्रेम कभी-कभी विभाजित होकर अनेकागी हो जाता है।' 'अजातशत्रु' की मागन्धी बुद्ध द्वारा अपने रूप का तिरस्कार सहन न करके प्रतिशोध लेना चाहती है। इसीलिए उसके बाहुबल से मोहान्ध होकर महाराज उदयन उसे अपनी रानी बना लेते हैं, किन्तु यथेष्ट सम्मान पाकर भी वह लालसा-ज्वाला से जलती रहती है। आखिर वारविलासिनी बनती है, शैलेन्द्र से प्रवंचित होती है और फिर बुद्धद्वारा ही उसका उद्धार होता है। एकाधिकार की वासना के कारण ही वह रूपगर्विता नारी अनेकागी हो जाती है, अपनी निष्ठा खो देती है और इतने उत्पात करती है।

'स्कन्दगुप्त' की विजया भी अनेकामी दिखाई देती है। एकबार वह स्कन्दगुप्त की 'भयानक और सुन्दर' मूर्ति को देखकर आकर्षित होती है, किन्तु उन्हें विरक्त समझकर साथ ही उनकी वैभव हीनता का अनुमान कर उनकी ओर से अनमनी हो जाती है। फिर वह महाबलाधिकृत भटार्क की वीरत्वव्यंजक मूर्ति को अपनाना चाहती है और न्यायाधिकरण में उसकी घोषणा भी कर देती है। फिर वह अपने गुप्त रत्नागारों का प्रलोभन-देकर स्कन्दगुप्त को अपनाना चाहती है। उससे निराश होकर वासनातर में

वह पुरगुप्त की भोग्या बनती है और शर्वनाग का भी अनुसरण करती है, फलतः भटार्क भी उसे तिरस्कृत करता है तथा सम्राट स्कन्दगुप्त भी। विजया का चरित्र इसका प्रमाण है कि प्रसादजी प्रेम मे निष्ठा को सर्वोपरि मानते हैं और प्रवचना या छलना को आत्मघातक सिद्ध करते हैं। प्रसाद-साहित्य में इस निष्ठाहीनता के और कई प्रकरण हैं। 'जनमेजय के नागयज्ञ' की दामिनी पतिनिष्ठा-विहीन होकर शिष्य उत्तंक से वासनापरक कलुषित प्रस्ताव करती है। उसकी उपेक्षा की प्रतिक्रियास्वरूप वह तक्षक से मिलकर प्रतिशोध तन्त्र का कार्यक्रम बनाती है। इसी बीच वह भ्रष्ट और मद्यप अश्वसेन की ओर अपनी कामुक मनोवृत्तियाँ प्रदर्शित करती है। इन भयंकर काण्डों के उपरान्त कहीं उसे हित-अनहित का ध्यान आता है।

इसी प्रकार 'राज्यश्री' की मानिनी सुरमा को भी उसका मनचलापन और उसकी महत्वाकांक्षाएँ भटकाती हैं। "कामना" मे लालसा का स्वर्णमदिरा-मोह उसका सत्यानाश कर देता है। 'तितली' में अनवरी की चचल मनोवृत्ति-कृष्णमोहन, इन्द्रदेव आदि के प्रति व्यक्त होती रहती है और अन्त मे उसकी दुर्दशा हो जाती है। 'कंकाल' की चदा आदि वणिक्वृत्ति वाली कामुक स्त्रियों का प्रेम भी असफल सिद्ध हुआ है। अतः स्पष्ट है कि लेखक का मुख्य यही प्रतिपाद्य रहा है कि स्थिर प्रेम और स्थायी सुख इस उच्छृंखल प्रणय सबंध द्वारा तब तक सभव नहीं है, जब तक उसे निष्ठापूर्वक पवित्र प्रेम के रूप में पर्यवसित न कर लिया जाय। प्रसादजी ने ऐसी निष्ठारहित पात्र-पात्रियो को प्रायः अंत मे सद्‌गति प्रदान की है, कभी-कभी असाध्य स्थितियों मे उनका नाश भी करा दिया है, पर निष्ठाहीन प्रेम का कहीं समर्थन नहीं किया है।

एकनिष्ट या एकोन्मुख प्रणय मे पूर्ण-समर्पण का भाव रहता है। और अविभाज्य सबंध का भी। 'कंकाल' की तारा मगल को अपने हृदय का सम्पूर्ण स्वत्व समर्पित कर देती है, किन्तु मगल अपनी मानसिक उलझन और सामाजिक विडम्बनाओं से विचलित होकर उसे पत्नी रूप मे ग्रहण नहीं करता अनाथ-अबला, तारा को नन्दो चाची उसे कोई अन्य सबंध स्थापित करने के लिए समझाती हैं, पर वह स्वीकार नहीं करती एव

निराश्रित भिखारिणी का जीवन व्यतीत करती रहती है। वह मगल के प्रति स्वागत कहती है—*"मैंने स्वप्न में भी तुम्हें छोड़कर इस जीवन में किसी से प्रेम नहीं किया* और न तो मैं कलुषित हुई।" (कंकाल–१८) उपेक्षित होकर भी अन्त तक वह मंगल का स्मरण करती रहती है। वह अपने इस पतिव्रत का ज्वलंत उदाहरण तब देती है, जब वह अपने आश्रयदाता विजय के विवाह–प्रस्ताव को ठुकरा देती है, तारा (यमुना) विजय से भ्रात भाव की भीख माँगती है और आद्योपांत उसका निर्वाह करती है। पति–परित्यक्ता होकर भी वह आजीवन निष्ठापूर्ण रहती है। 'तितली' के बाबा रामनाथ की पोषिता पुत्री बंजो (तितली) मधुवा की बाल सहचरी होने के कारण उसकी पत्नी बनती है और इन्द्रदेव के वैभव को ठोकर मारकर एकनिष्ठ प्रेम का आदर्श प्रस्तुत करती है।

एकनिष्ठ प्रतिप्रेम का आदर्श विशाख की 'चन्द्रलेखा' भी प्रस्तुत करती है। चन्द्रलेखा मिथ्या प्रलोभन में न पड़कर अपने अनन्य प्रेमी पति के प्रति पूर्णतः समर्पित रहती है। प्रेम की एक–निष्ठता के लिए प्रसादजी ने दाम्पत्य जीवन को सर्वोपरि प्रमाणित किया है। 'एकघूँट' में स्वच्छन्द प्रेम के सन्दर्भ में वे इस एकनिष्ठता का स्पष्ट प्रतिपादन करते हैं। आनन्द का मत है कि–"प्रेम की स्वतन्त्र आत्मा को बन्दी–गृह में डालने से उसका स्वास्थ्य, सौन्दर्य और सरलता सब नष्ट हो जाएगी।" (एकघूँट–१४) कवि 'रसाल' भी प्रेम का प्रसार मानवतावाद के रूप में करना चाहता है। मानवता आदान–प्रदान चाहती है। पर वनलता इस आदान–प्रदान की चर्चा करती हुई कहती है—"मैं जिसे प्यार करती हूँ, वही–केवल वही व्यक्ति–मुझे प्यार करे।" अन्त में 'अरुणाचल आश्रम' अपने समवेत विचारों के अनुसार उच्छृंखल प्रेम को सुशृंखल बनाने में समर्थ होता है।

प्रसाद के अनुसार पारस्परिक विनिमय के बिना प्रेम असन्तुलित और एकांगी हो रह जाता है। 'प्रसाद' के ऐसे अनेक पात्र हैं, जो किसी को अपनाना चाहते तो हैं, किन्तु दूसरी ओर से उसका प्रतिदान न पाकर वे एकान्त में उसकी निराकार उपासना करने लगते हैं। उनकी कहानियों में इस प्रकार के अनेक प्रसंग प्राप्य हैं। एकांगिता

के सन्दर्भ में इरावती और अग्निमित्र का प्रणय सम्बन्ध भी विचारणीय है। यद्यपि बचपन में दोनों में मैत्रीभाव (सख्यप्रेम) था, किन्तु लोकबन्धन के कारण इरावती अन्यमनस्क हो जाती है। वह अनाथ जीवन बिताती हुई महाकाल के मन्दिर में देवदासी बनती है। वहीं एक दिन दोनों का आकस्मिक मिलन होता है। पहले इरावती उदासीन सी रहती है, पर अग्निमित्र के दृढ प्रेम; उसकी मनस्विता और उसके शौर्य से प्रभावित होकर अन्ततः प्रस्तुत हाती दिखाई देती है। प्रसाद साहित्य में ऐसे अनेक पात्र हैं, जो अपनी निष्ठा एवं औदार्य से अपरपक्ष को अपनी ओर मोड लेते हैं। उनके पुरुष पात्र क्षणिक मोहवश नारी जीवन के साथ खिलवाड़ करते दिखते हैं— उसे त्याग देते हैं, पर उनकी नारी अपनी सेवा और मधुरिमा से उसे पुनः स्नेहसूत्र में आबद्ध कर लेती है। प्रेमोन्मुख लता पर प्रेम निष्ठा की यह विजय प्रसाद-साहित्य में बहुव्याप्त है।

८. प्रीति और प्रतीति परस्पर पूरक :—

प्रसाद के प्रेमी पात्र परस्पर अगाध विश्वास व्यक्त करते दिखते हैं। उनकी श्रद्धा स्वरूपा नारी तो स्पष्ट कहती है कि —

" वह भोला इतना नहीं छली-मिल जाएगा हूँ प्रेमपली।"

श्रद्धा की इस आत्म प्रतीति में सच्चे प्रेम की झलक है। प्रसाद की पतिप्राणा नारियाँ अपने जीवन-धन पर इसीभाव से अपना सर्वस्व न्योछावर कर देती हैं। तितली चौदह वर्षों का विरह झेलती हुई भी निश्चिय पूर्वक यही कहती रहती है 'मुझे विश्वास है—वह किसी दूसरी स्त्री को प्यार नहीं करते।" संसार मधे उसे चोर और हत्यारा कहे पर तितली के प्रेमी हृदय में अपने पति के प्रति अगाध विश्वास है।

'अजातशत्रु' में पद्मावती समय के फेर से पति-परित्यक्ता हो जाती है, किन्तु उस वियोगकाल में भी दृढ स्वर से यही कहती रही है —

'हमारा प्रेमनिधि सुन्दर सरल है,
अमृत है, नहीं उसमें गरल है।'

अन्त में उसका सतीत्व विजयी होता है। मकान की तारा को मगल से ठुकराई जाने ४

पर भी यह आशंका नहीं होती कि मगल ने उसे त्याग दिया है। उसे मात्र यही अनुमान होता है कि किसी ने अपनी माया और कूटचातुरी द्वारा उसे उलझन में डाल दिया है।

प्रीति और प्रतीति का एक सुन्दर उदाहरण 'आकाशदीप' में प्राप्य है। चम्पा जलदस्यु बुद्धगुप्त के प्रति (प्रतिशोधातुर होती हुई भी) प्रेम तो करने लगती है, पर उसका भावुक मन (प्रीति करके भी) प्रतीति नहीं करना चाहता। एक दिन चम्पा जब प्रतिशोध की कृपाणी फेंक देती है तो बुद्धगुप्त पूछता है—"क्या मैं विश्वास करूँ कि अब क्षमा कर दिया गया हूँ।' वह कहती है—'विश्वास, कदापि नहीं, विश्वास मैं अपने हृदय पर नहीं करती, जब उसने ही धोखा दिया। मैं तुमसे घृणा करती हूँ, किन्तु तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अन्धेर है जलदस्यु, मैं तुम्हें प्यार करती हूँ।" यहाँ कर्तव्य और भावना के द्वन्द्व के बीच भावना (प्रेम) की विजय हुई है। यहाँ प्रेम विश्वास को नकार रहा है, पर यह नहीं कहा जा सकता कि चम्पा बुद्धगुप्त के प्रति विश्वस्त नहीं है। उसकी अन्तर्प्रतीति ने ही इस अयाचित प्रीति को जन्म दिया है। इस प्रकार के प्रसंग बड़े मर्मस्पर्शी हैं।

५. प्रेम, एक अनायासजन्य संयोग :—

प्रसाद-साहित्य में प्रेम कोई पूर्वनियोजित एवं योजनाबद्ध जीवन-व्यापार नहीं है, बल्कि एक आकस्मिक संयोग है, जो अनायास उत्पन्न होता है और परिस्थितियों से परिचालित होता है। भारतीय साहित्य में संयोग के कारण रूप में अनेक उपादान स्वीकार किए गए हैं जैसे आलम्बन के प्रति आश्रय में गुणश्रवण और चित्रदर्शन से पूर्वराग का उत्पन्न होना। प्रसाद ने इस पूर्वराग को महत्व नहीं दिया है। उनके साहित्य में प्रेमोदय का सबसे सशक्त कारण है—रूप-ध्यान ? रूप-दर्शन करते ही उनके पात्रों में प्रेम का संयोग होने लगता है। प्रसादजी के मतानुसार जब हृदय की स्नेह-भुवनाओं का सहज आह्लाद और मधुर आलाप मन के नीरस तथा नीरव शून्य में प्राणों का संगीत उँड़ेलने लगता है, तभी "वसन्त में मकरन्द की सृष्टि' होती है और हृदय 'अनुभूतिमय' हो जाता है। प्रसादजी ने प्रेम संयोग में शक्ति और सौन्दर्य को सर्वोपरि सिद्ध किया है। ध्रुवस्वामिनी के नारीत्व-रक्षण हेतु कुमार चन्द्रगुप्त जब

आत्म बलिदान हेतु तत्पर हो जाता है, तो वह भी प्रेम संयोग के लिए समुत्सुक हो उठती बरबस उससे स्नेहालिंगन हो जाता है और तब वह कहती है—"कितना अनुभूतिपूर्ण था वह एक क्षण का आलिंगन... ...। (ध्रुवस्वामिनी–३६) अन्त में यह प्रेम संयोग स्थायी सिद्ध होता है। वस्तुतः 'जीवन का यह संयोगपूर्ण उल्लास मनुष्य के भविष्य में मंगल और सौभाग्य को आमन्त्रित करता है।"

प्रसाद में अधिकांश प्रेम-संयोग आकस्मिक हैं, किन्तु उन्होंने शारीरिक सौन्दर्य से उत्पन्न आकस्मिक प्रेम संयोग को अस्थायी माना है। उनकी एक कहानी 'ग्रामगीत' का जीवन एक विधवा रोहिणी के प्रतिमनायास खिंच आता है, क्योंकि—'वह उसके यौवन का प्रभात था। परिश्रम करने से उसकी एक-एक नसें और मांसपेशियाँ जैसे गढ़ी हुई थीं।" (आँधी–८६) पर यह सौन्दर्य और यौवन प्रेम को स्थायित्व नहीं दे पाता। वह जिस तेजी के साथ अकस्मात् उदित होता है उतनी ही त्वरा के साथ विलीन हो जाता है।

प्रसादजी ने दीर्घ वियोग के पश्चात् भी संयोग की स्थिति घटित कराई है। श्रद्धा और मनु, चन्द्रलेखा और विशाख आदि बिरहित होकर भी अततः पुनर्मिलन करते हैं। इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण तितली और मधुबन में देखने को मिलता है।
प्रसादजी ने ऐसे दम्पति को भी संयोगावस्था में पहुँचा दिया है, जो उच्छृंखल भोग-लालसा के कारण एक बार सम्बन्ध-विच्छेद करके परपुरुष गामी या परस्त्री-गामी हो जाते हैं, किंतु कालांतर में अपनी भूल-स्वीकार कर प्रायश्चित करते हैं। 'कंकाल' की किशोरी देवनिरंजन के साथ पुत्र मोह वश पहले भ्रष्ट हो जाती है, उसका पति श्रीचन्द भी अर्थलोभवश चन्दा से अवैध संबंध स्थापित कर लेता है, किंतु इन दोनों में सुसयोग फिर हो ही जाता है। 'अजातशत्रु' के प्रायः सभी दम्पति जैसे, बिंबसार—छलना, प्रसेनजित-शक्तिमती, उदयन-पद्मावती आदि प्रणयकलह और वियोग के पश्चात् पुनः संयोगावस्था प्राप्त करते हैं। मागधी का उदयन और शैलेन्द्र से संबंध क्रमशः रूप और वासनाजन्य रहा है, अतः विफल हो जाता है, किन्तु वह भी अपने पूर्ववैरण्य स्वामी गौतम बुद्ध को अंत में प्राप्त कर लेती है, पति रूप में नहीं तो

उपासनाकल्प में ही सन्नीन यहाँ भी सयोगावस्था है। विशाख और चन्द्रलेखा (राजकीय अतिचारों से वियुक्त किए जाने पर भी) चिरसंयुक्त रहते हैं इसी प्रकार रानी कामना अपने प्रियवयस्य सतोष को छोड़कर विदेशी युवक विलास के मोह में पड़कर कुछ दिनों भटकती है, पर कालान्तर में शुद्ध बुद्धि के उदय होने पर सन्तोष से ही दाम्पत्य सबध स्थापित करती है। स्पष्ट है कि प्रसाद का प्रेम प्रायः सयोगमूलक है। उन्होंने सयोग द्वारा जीवन के दुःख, द्वन्द्वों और द्रोह को पराभूत किया है। कार्नेलिया का चन्द्रगुप्त से, वाजिरा का अजातशत्रु से और नागकन्या मणिमाला का सम्राट जनमेजय से सयोग होना इसी कथन का परिचायक है। प्रसाद की ऐसी पात्रियाँ, जो किसी परिस्थिति या *प्रतिक्रियावश निर्बन्ध रहना चाहती हैं, अन्त में अपने प्रिय के प्रति समर्पित होती दिखती* हैं। उनकी मालवती सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी बनने के प्रलोभनवश अभय के प्रेम-प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है, पर बाद में स्वतः समर्पित हो जाती है। इरावती भी अपने *अनन्य प्रेमी अग्निमित्र से दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित करती प्रतीत होती है।* इन्द्रजाल में बेला और गोली का पुनर्मिलन इसी प्रेम सयोग का प्रमाण है। शैला और चन्द्रदेव (तितली) का सयोग भी इसी मत का पोषक है। परिवर्तन', 'सहयोग' तथा 'कलावती की शिक्षा' आदि कहानियों में इसी प्रेम सयोग के उदाहरण प्राप्त होते हैं।

'प्रेमपथिक' में प्रेम सयोग का सैद्धान्तिक निरूपण करते हुए कवि ने यही मत प्रस्तुत किया है—

'प्रियतम मय यह विश्व निरखना फिर उसको है विरह कहाँ,
कहाँ रहा तब द्वेष किसी से क्योंकि विश्व ही प्रियतम है।
हो जब ऐसा वियोग तो सयोग वही हो जाता है,
वह सभाएँ उठ जाती हैं, सत्य तत्त्व रह जाता है।''

प्रकट है कि यह सयोग प्रसाद के प्रेमदर्शन का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है।

६. प्रेम प्रायः प्रथम दृष्टिजन्यः—

प्रसाद [redacted] पात्रों का प्रेम प्रायः प्रथम दृष्टिजन्य (फर्स्ट साइट लव) कहा जा सकता है। उनके साहित्य में अधिकांश स्नेह-सम्बन्ध प्रथम दर्शन से प्रेरित है। कामायनी

है मनु-श्रद्धा के प्रेम को प्रथम दृष्टिजन्य सिद्ध करके कवि ने अपने इसी अभिमत की पुष्टि की है—

...'और देखा वह सुन्दर दृश्य नयन का इन्द्रजाल अभिराम....।'(कामायनी-४६) स्पष्ट है कि प्रसादजी ने रूपदर्शन को ही प्रेम का प्रथम हेतु माना है। प्रसाद के पूर्वराग में गुण श्रवण की स्थिति कुछ विलम्ब से आती है। काम सर्ग में स्वयं काम जब अपनी पुत्री (श्रद्धा) का गुणगान करता है तो मनु उसके प्रति आकर्षित होकर उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। यहाँ पूर्वराग और पुरातन प्रेम की अन्तर्प्रेरणा है। इसी प्रकार विशाख अपनी यौवन सुलभ स्मृतियों का संकलन करता हुआ जब अनुभूति प्रवण होकर चन्द्रलेखा को देखता है तो एकस्मात उसकी रूप माधुरी के प्रति आकृष्ट हो जाता है। इस प्रथम दर्शन से विशाख और चन्द्रलेखा दोनों मोहग्रस्त हो जाते हैं। विशाख के शब्दों में—

'देखो नयनों ने एक झलक, वह छवि की छटा निराली थी।' कालान्तर में दोनों का संयोग होता है और प्रेम-परिणय के रूप में परिणत हो जाता है। इस प्रकार प्रसाद का दृष्टि प्रेम इन्द्रिय से आरम्भ होकर आत्मा की ओर संचरित होता दिखाई देता है। प्रसादजी ने नर-नारी सौन्दर्य की पहली झलक से ही प्रेमी पात्रों को प्रभावित कर दिया है। प्रथम दर्शन में ही रानी कामना-नवागत विलास के ऐन्द्रजालिक व्यक्तित्व से पराभूत हो जाती है। युवक विलास और रानी कामना आदिम जीवन में नर-नारी के प्रतीक हैं। दोनों प्रथम रूप दर्शन द्वारा एक दूसरे के प्रति आकृष्ट और समर्पित होते हैं। कामना को अनुभव होता है—"यह कौन ? मैं क्यों झुकी जा रही हूँ-इसका व्यक्तित्व ऐसा है कि मैं इसके सामने अपने को तुच्छ बना दूँ और अपने को समर्पित कर दूँ।' (कामना-६)

प्रसादजी के कुछ पात्र प्रथम रूप-दर्शन करके, उस रूपसौंदर्य से प्रभावित होकर आत्मबल सहित अपना करणीय कर डालते हैं। कौशल की राजकुमारी वाजिरा बन्दी अजातशत्रु का रूप-लावण्य देखकर विमुग्ध हो जाती है। अन्त में, हृदय की दुर्बलता या प्रेम की सबलता उसे उत्प्रेरित करती है। वह अपने मनोनीत प्राणनाथ

(अजातशत्रु) को—' मैं अपना सर्वस्व तुम्हें समर्पण करती हूँ बढ़कर वरण करती हुई माला पहनाती है। इस प्रथम दृष्टि-प्रेम में सरलाहस और सद्‌गुण (साहसपूर्ण) का अभिनिवेश है।

प्रथम दृष्टि प्रेम द्वारा प्रसादजी ने वंशानुगत शत्रु-भाव का शमन भी कराया है। मणिमाला को देखकर पौरव सम्राट जनमेजय प्रभावित हो जाता है किन्तु नागकुमारी का परिचय पाकर वह आतिथ्य ग्रहण करने में संकोच करता है। मणिमाला को सन्देह होता है कि उसे शत्रु या समझकर माननीय अतिथि रुष्ट हो गए हैं। इस पर जनमेजय की उक्ति है —

भद्रे तुम्हारे इस सरल मुख पर तो शत्रुता का कोई चिह्न ही नहीं है। ऐसा पवित्र सौन्दर्यपूर्ण मुख मण्डल तो मैंने कहीं नहीं देखा। सौन्दर्य के प्रथम दर्शन से प्रभावित आर्य जाति के सम्राट जनमेजय उस नागकुमारी की प्रजा होना भी अच्छा समझते हैं। दूसरी ओर प्रथम दृष्टि प्रभावित मणिमाला के हृदय में अन्तर्द्वन्द्व होने लगता है — ऐसी उदारता व्यंजक मूर्ति ऐसा तेजोमय मुखमण्डल यह तो शत्रुता करने की वस्तु नहीं है। यहां तो अन्तःकरण में एक तरह की गुदगुदी होने लग गई।

युद्ध स्थल में उसकी वीर-रूप पूर्ण मुखश्री देखकर मणिमाला और भावविह्वल हो जाती है। अन्त में वह प्रेमदूती बनकर इन दोनों क्रुद्ध जातियों को प्रेम सूत्र में बांध देती है।

इसीप्रकार चन्द्रगुप्त में अलका-सिंहरण का प्रेम कल्याणी-चन्द्रगुप्त का प्रेम स्कन्दगुप्त-विजया का आकर्षण तथा पुरस्कार में अरुण-मधूलिका का प्रेम प्रथम दृष्टिगत प्रेम कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त 'प्रसाद-साहित्य में प्रथम दृष्टि में विकसित स्फुट प्रेम-सम्बन्ध अन्य अनेक स्थलों पर भी प्राप्य है। इस प्रथम दृष्टि प्रेम के आन्तरिक उत्कर्ष के साथ ही सौन्दर्याकर्षण भी एक प्रधान कारण है। उपर्युक्त उदाहरण प्रायः शुद्ध रागात्मिका वृत्ति के हैं। रोमैंटिक प्रेम-रहस्यों के अन्तर्गत भी प्रथम रूप, दर्शन के अनेक प्रसंग प्राप्य हैं जो यथास्थान विचारणीय हैं।

७. विरह–वेदना ही प्रेम का पाथेय :

प्रसादजी के साहित्य में मिलन और विरह की आँखमिचोनी होती दिखती है। यद्यपि उनके प्रेम में न मिलन का सुख है और न विरह का विषाद, वह अन्तत प्रसादान्त हो जाता है, फिर भी उन्होंने विरह या विप्रलम्भ को प्रमुखता प्रदान की है।

प्रसाद–साहित्य में विरहावस्था यद्यपि अनेक पात्रों के जीवन में आती है, फिर भी प्राय वह रूपान्तरित हो जाती है या कुछ टल सी जाती है। उदाहरणार्थ कुछ प्रकरण द्रष्टव्य हैं। मनु और श्रद्धा सुखमय जीवन–यापन करते हुए वियुक्त हो जाते हैं। मनु अपने पुरुषत्व के मोह म अपने सकुचित ममत्ववश ईर्ष्यालु होकर श्रद्धा के मातृत्व को दुर्वह, द्विविधा और प्रेम बाँटने का प्रकार मान लेता है और अपना ज्वलनशील अन्तर लेकर चला जाता है। श्रद्धा की विरह वेदना को अपरिसमाप्य घोषित करता हुआ कवि कह जाता है—"वह छोटी –सी विरह नदी थी जिसका है अब पार नहीं।" किन्तु उसका विरह मनु को पुनप्राप्ति के बाद समाप्त हो अवश्य जाता है, वासना रूप में नही तो निर्वेद रूप में सही। यह वस्तुत सयोग और वियोग से अनुप्राणित प्रेम का सात्विक स्वरूप है। प्रसाद के प्रेम–विरह की यह प्रक्रिया सतत विकासोन्मुख है। 'चित्राधार' के विरह प्रसग पर्याप्त स्थूल हैं और कामायनी के सूक्ष्म 'आँसू' उनकी विरह–शमन प्रक्रिया की सन्धि रेखा हैं। उसमें एक ओर वैयक्तिक विप्रलम्भ है तो दूसरी ओर समष्टिमूलक विरह, और प्रसादान्त आनन्द की प्रतिष्ठा है। 'झरना' और 'लहर' के गीतों में भी यत्र तत्र इसी विरह का स्वर सुनाई देता है—"धीरे से वह उठता पुकार, मुझको न मिला रे कभी प्यार।" × "अरे कहीं देखा है तुमने–उसे प्यार करने वाले को ।" आदि पक्तियों में इसी विरह–वेदना के उद्गार हैं। प्रसाद की प्रारम्भिक कृतियों में विरह की स्थिति अधिक बाधक है। कालान्तर में वही सुख दु खातीत आनन्द में पर्यवसित हो गयी है। 'ककाल' के पात्रों का पारस्परिक विच्छेद जहाँ आत्यन्तिक दु खद है, वहीं 'इरावती' में विच्छेद–मिलन से परे निस्पृहता का भाव है प्रसाद का कहानियों में भी यही स्थिति है। 'आकाशदीप' की चम्पा किसी अज्ञात निर्वात

के अभिशाप वश मिलते-मिलते विरहिणी हो जाती हैं। प्रसादजी ने इस वियोगावस्था को विविध रूपों में रखा है। उनके विरह वर्णन में यत्रतत्रयथाप्रसंग चिन्ता, व्याधि, उन्माद, जड़ता गुणकथन, स्मरण, प्रलाप मूर्छा आदि सभी स्थितियां खोजी जा सकती हैं पर इनका अध्ययन व्यावहारिक (मनोवैज्ञानिक) आधार पर होना चाहिए न कि शास्त्रीय आधार पर।

विरह की स्थितियों में प्रवास विरह और मान विरह प्रमुख हैं। प्रसादजी ने मान विरह के संकेत कम दिए हैं, केवल कामायनी में मनु श्रद्धा के बीच 'नागयज्ञ' में तक्षक तथा सरमा के बीच और 'इरावती' में धनदत्त एवं मणिमाला के बीच मानविरह के उल्लेख किए हैं। उन्होंने वैधव्य या वैधुर्य को भी चिरकालिक वियोग के रूप में प्रस्तुत किया है।

८. प्रेम में स्मृति का ही सुख

प्रसादजी का प्रेम प्रायः स्मृति का रूप धारण कर लेता है। उनकी एक स्वीकारोक्ति है—"वह स्मृति जगती है प्रेम की नींद सो के" वस्तुतः 'प्रेम में स्मृति का ही सुख है। एक टीस उठती है, वही तो प्रेम का प्राण है। आकाशदीप में बुद्धगुप्त को पिछले दिनों की याद दिलाती हुई चम्पा कहती है—'मुझे उन दिनों की स्मृति सुहावनी लगती है, जब तुम्हारे पास एक ही नाव थी और चम्पा के उपकूल में पण्य लादकर हम लोग सुखी जीवन बिताते थे। इस जल में अगणित बार हम लोगों की तरी आलोकमय प्रभात में, तारिकाओं की मधुर ज्योति में थिरकती थी।....वस निर्जन प्रान्त में जब मांझी सो जाते थे, दीपक बुझ जाते थे, हम तुम परिश्रम से थक कर, पालों में शरीर लपेट कर एक दूसरे का मुंह क्यों देखते थे? वह नक्षत्रों की मधुर छाया।"... (आकाशदीप–१५) इसी पुरातन स्मृति की प्रेरणा वश चम्पा बुद्धगुप्त के वैभवशाली जीवन से निकल कर निरीह प्राणियों की सेवा हेतु अपनी पूर्वस्थिति की ओर लौट जाती है। स्पष्ट है कि प्रसाद साहित्य में स्मृति प्रेम को सुदृढ बनाती है।

स्मृति का एक आदर्श रूप 'स्कन्दगुप्त' में द्रष्टव्य है। मातृगुप्त अपनी प्रणयिनी मालिनी की याद में प्रेम का मन' सुख अनुभव करता रहा है—'स्मृति के वे सुन्दरतम

लाए यों ही भूल नहीं जाना। (स्कन्दगुप्त–२३) पर अन्त में अपनी पूर्व प्रणयिनी मालिनी को एक दिन न्यायिकरण में वेश्या रूप में देखकर वह विक्षुब्ध हो उठता है। उसके इस कथन में स्मृति की घनीभूत पीड़ा है—"तुम्हारी पवित्र स्मृति को कंगाल की निधि की भाँति छिपाए रहा। मेरे शून्य भाग्याकाश के मन्दिर का द्वार खोल कर तुम्हीने उनींदी उषा के सदृश झाँका था और मेरे भिखारी संसार पर स्वर्ग बिखेर दिया था "... तुमने सोने के लिए नन्दन का अम्लान कुसुम बेच डाला।". वह मालिनी को आश्वस्त करता हुआ कहता है–"मैं इतना दृढ़ नहीं हूँ कि तुम्हें इस अपराध के कारण भूल जाऊँ। पर अब यह स्मृति दूसरे प्रकार की होगी। उसमें ज्वाला न होगी, धुँआ उठेगा और तुम्हारी मूर्ति धुँधली होकर सामने आयेगी '... (स्कन्दगुप्त–११७) प्रसादजी के ये आदर्श प्रेमी पात्र हर स्थिति में प्रेम-स्मृतियों को सँजोए रहना चाहते हैं। स्मृति ही उनका पाथेय है। कवि की स्वीकारोक्ति है—'उसकी स्मृति पाथेय बनी है, थके पथिक की पन्था की। (लहर–११) प्रेम-स्मृतियाँ व्यक्ति को विद्रोही भी बना देती हैं। अजातशत्रु में-मल्लिका जब हृदयहीन बन्धुल के' उष्णीश का फूल' बन जाती है तो उसका पूर्व प्रेमी विरुद्धक व्यवस्था विरोधी बन जाता है। वह षड्यन्त्रपूर्वक विरुद्धक की हत्या करता है और मल्लिका से पुनः प्रेम प्रस्ताव करता है, किन्तु असफल। इसी प्रकार चाणक्य की बाल प्रणयिनी सुवासिनी जब सत्ता द्वारा अपहृत कर ली जाती है तो चाणक्य राक्षस से प्रतिद्वन्द्विता अनुभव करता है और नंदवंश का नाश कर देता है। 'पुरस्कार' की मधूलिका अपनी विपन्न स्थिति में राजकुमार अरुण की याद याद करती है और वह प्राप्त भी हो जाता है। यह स्मृति रूप प्रेम अत्यन्त उत्प्रेरक है। वस्तुतः प्रसाद का कवि 'मस्तक में स्मृतियों की घनीभूत पीड़ा छिपाए है। उनके अनुसार प्रेम की मादक स्मृतियाँ संवेदनशील व्यक्ति के हृदय को छिन्न-भिन्न कर देती हैं। 'गुण्डा' कहानी का नन्हकूसिंह प्रेम में हताश और प्रेम स्मृतियों से आंदोलित होकर ही मृत्युकामी बनता है। और अंत में संघर्ष करके मर मिटता है। यह प्रेम-स्मृति का एक विध्वंसात्मक रूप है। यों, प्रसादजी के अधिकांश पात्र प्रेम-स्मृतियों से अस्त-व्यस्त नहीं होते, बल्कि उनके सहारे अपने जीवन के शेष दिन काट लेते हैं। दूसरों को

'विस्मृति भी उनके लिए स्मृति की वस्तु' बनती है। इस प्रेम-स्मृति में एक प्रकार के मन प्रसाद का भाव रहता है। यह प्रेम-स्मृति संयोगी जीवन में प्रायः कम उभर पाती है, पर वियोगी जीवन की तो यही एकमात्र धर्म एवं ध्येय है। प्रसादजी ने स्मृति को जीवनधन माना है। सात्विक स्मृतियाँ जीवन की वरदान हैं। वास्तव में- 'मनुष्य का हृदय न जाने किस सामग्री से बना है, वह जन्म जन्म की बात स्मरण कर सकता है और एक क्षण में सब भूल सकता है।' (इन्द्रजाल-८०) यह स्मृत्यालोक प्रसाद-साहित्य को ओज्ज्वल बनाए हुए है।

९. प्रेम: पुरातन और जन्म जन्मान्तर का —

प्रसाद-साहित्य में प्रेममनोविज्ञान के ये अनेक दृष्टांत प्राप्य हैं। उनके प्रेम-प्रसंगों में पुरातन स्मृतियों के कई प्रकरण हैं। 'कंकाल' की वियोगी पुत्रकामना से देवनिरंजन के आश्रम पर जाती है जो किशोरी का नाम जानकर देवनिरंजन अपने पूर्व प्रेम की स्मृति से आक्रान्त हो जाता है। उसे अपना वह बाल्य जीवन याद आता है, जब वह 'वालुका के तट पर वह अपनी बाल सहचरी किशोरी' के साथ खेला करता था। इस पुरास्मरण में उसका मन चंचल हो जाता है, फिर दोनों एक दूसरे को पहचानकर प्रणयबद्ध हो जाते हैं। प्रजापति मनु देवसृष्टि में जिस बाल सखा के साथ प्रेम-क्रीड़ा किया करते थे, वही काम की पुत्री (श्रद्धा) प्रलय की समाप्ति के बाद उसे पुनः मिलती है। 'तितली' बंजो और मधुवा दम्पत्ति होने के पूर्व बालसहचर हैं, इसलिए वे आजीवन अपने पुनीत प्रेम का निर्वाह करते हैं।' इरावती' का अग्निमित्र भी इरा का पूर्व (बाल) प्रणयी है। प्रसादजी ने चाणक्य और सुवासिनी को भी बाल प्रणयी सिद्ध किया है। अजातशत्रु' के विरुद्धक और मल्लिका भी पूर्व प्रणयी हैं, गुण्डा कहानी का नन्हकूसिंह राजमाता का बाल प्रेमी है। इसके अतिरिक्त भी और कई प्रेमी युग्म हैं। इनसे इतना स्पष्ट है कि प्रसादजी प्रेम को आकस्मिक मानते हुए भी उसके पीछे जन्म जन्मान्तर के पुरातन संबंधों की अन्तःप्रेरणा स्वीकार करते हैं।

१०. प्रेम में कर्त्तव्य और भावना का द्वन्द्व :-

प्रेमियों का यह जीवन ही प्रेम है जहाँ भावना और कर्त्तव्य का द्वन्द्व चला करता

सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। कोशल के सुनिश्चित राष्ट्रीय नियम के अनुसार जब राजा के कृषि-कार्य हेतु मधूलिका के पितृ-पितामहों की भूमि ले ली जाती है तो वह मूल्य रूप में न मुद्राएं लेती है और न अन्य कोई भूमि। कालान्तर में अपनी विपन्नावस्था में यही वनबाला मधूलिका राजकुमार अरुण के प्रेम और राष्ट्रद्रोह के ऊहापोह से उद्भ्रान्त होकर वह राजा के समक्ष सारा रहस्योद्घाटन कर देती है। फलतः अरुण को बन्दी बनाया जाता है। उसको प्राणदंड और मधूलिका को पुरस्कार निश्चित किया जाता है, किन्तु 'मुझे भी प्राणदण्ड मिले' कहकर वह अरुण के पास आ खड़ी होती है। इस कथन में एक आदर्श प्रणयिनी एवं राष्ट्रभक्त नारी का प्रेम-रहस्य निहित है। पुरस्कार स्वरूप वह प्राणदण्ड मांगकर प्रेम (भावना) का समर्थन करती है और अरुण के आक्रमण का रहस्योद्घाटन करके अपने कर्त्तव्य (राष्ट्रीयता) का परिचय देती है। यह स्थिति वस्तुतः प्रसादीय प्रेम की आदर्श है।

'चन्द्रगुप्त' सिल्यूकस की दुहिता कार्नेलिया भी इस दृष्टि से विवेचनीय है। वह भारतीय साहित्य और दर्शन का अध्ययन करती हुई भारतीयता में पग जाती है। अपने अन्तर्तम में वह आर्यावर्त्त के भावी सम्राट चन्द्रगुप्त के प्रति आकर्षित होने के कारण फिलिप्स और एलिस के अन्धे प्रेम का तिरस्कार करती हुई अपने पिता के प्रतिद्वन्द्वी (चन्द्रगुप्त) के प्रति ममतामयी हो जाती है। कार्नेलिया बड़ी भावनामयी और संवेदनशीला है। उसके हृदय में एक ओर अपने पिता के प्रति श्रद्धा (पितृप्रेम) है और दूसरी ओर पितृ द्रोही-विदेशी, विजातीय पुरुष-चन्द्रगुप्त के प्रति प्रेम है। ऐसी स्थिति में वह कर्त्तव्य और भावना से आन्दोलित दिखती है। अन्त में विवश होकर वह एक दिन अपने पिता से कह पड़ती है "मैं स्वयं पराजित हूँ, मुझे इस भारत की सीमा से दूर ले चलिये, नहीं तो मैं पागल हो जाऊँगी।" इसप्रकार स्पष्ट है कि कार्नेलिया को प्रेमाभिभूत करके प्रसादजी ने उसे कर्त्तव्य से पराङ्मुख नहीं किया है हाँ द्वन्द्वग्रस्त अवश्य दिखाया है।

कर्त्तव्य और भावना के समाहार की दृष्टि से देवसेना का चरित्र बड़ा स्पृहणीय की हत्या करने के लिए वह एक कृपाणी वस्त्र में छिपाए रहती हैं, पर हरदार अपने

है। उसके हृदय में कोमलतम अनुभूतियों का स्पन्दन है और मन में कर्त्तव्य का बोध। उसका अन्तर-मन युवराज स्कन्दगुप्त के प्रति आसक्त है किन्तु विजया की प्रतिस्पर्धा, लोकहितैषणा और उत्साह के कारण वह जूठा स्थान कदापि नहीं ग्रहण करती, क्योंकि मूल्य देकर वह प्रणय नहीं लेना चाहती। उसकी कामनाएं विस्मृति के नीचे दबा दी गई हैं। वह अपने हृदय की कोमल कल्पना को चुपचाप सुला देती है। इस निरीह आत्म-त्याग में उसे कितना विषाद सहन करना पड़ा होगा—यह कल्पनातीत है, किन्तु अन्ततः वह भावों को जीत लेती है और कर्त्तव्य निभाने के लिए नये मूल्यों की सेवा करती है, राष्ट्रोत्थान का संकल्प लेती है और महादेवी की समाधि परिष्कृत करती रहती है। युवराज-स्कन्दगुप्त के प्रेम—प्रस्ताव करने पर देवसेना का यह उत्तर—"मालव ने जो देश के लिए उत्सर्ग किया है उसका प्रतिदान लेकर मृत आत्मा का अपमान न करूँगी।" अन्त में उसे कहना ही पड़ता है—"इस हृदय में स्कन्दगुप्त को छोड़कर न तो कोई दूसरा आया और न वह जायेगा। अभिमानी भक्त के समान निष्काम होकर मुझे उसी की उपासना करने दीजिये। उसे कामना के भँवर में फँसाकर कलुषित न कीजिए।" कितनी जटिल परिस्थिति है यह! मन और हृदय दोनों का पूर्वापर योग है। जब भावनाएँ मचलती हैं, बुद्धि झिड़क देती है और अन्त में बुद्धि को भावमयी बना लेती है। प्रतिदान लेकर वह अपने प्रेम का वणिक्-व्यापार नहीं करना चाहती। इन दो स्थितियों के बीच एक नारी के हृदय की वेदना को प्रसादजी ने मनोयोगपूर्वक उभारा है।

भावना और कर्त्तव्य का ऐसा ही अन्तर्द्वन्द्व 'आकाशदीप' की चम्पा में दिखाई देता है। वह बुद्धगुप्त से विजित होकर रुष्ट भी है और उसके पौरुष के प्रति आकृष्ट भी। साथ-साथ जीवन यापन करती हुई वह भावना और कर्त्तव्य में आंदोलित दिखती है। एक ओर बुद्धगुप्त के साहचर्य, बलविक्रम और स्नेह संभार से प्रभावित होकर वह भावनामयी (प्रेममयी) बन जाती है, दूसरी ओर कर्त्तव्य से प्रेरित होकर अपने पिता के निष्ठुर हत्यारे (बुद्धगुप्त) से प्रतिशोध लेना चाहती है। बुद्धगुप्त है। यह द्वन्द्व प्रसाद-साहित्य में अपने उत्कर्ष पर है। 'पुरस्कार' की मधुलिका इसका

हृदय से विवश हो जाती है। अन्त में उसे कहना ही पड़ना है—" मैं तुमसे घृणा करती हूँ, किन्तु तुम्हारे लिए मर सकती हूँ।" अंधेर है जलदस्यु मैं तुम्हें प्यार करती हूँ।" इन शब्दों में भावना के आरोहावरोह तथा हृदय के घात-प्रतिघात की कितनी विचित्र पहेली दिखाई देती है। हृदय (भावना) से विवश होकर वह प्रतिशोध का कृपाण अतल सागर में डाल देती है, परन्तु बुद्धगुप्त को अपना 'विश्वास' नहीं देती। हाँ, हृदयगत भावना द्वारा बाधित होकर भी वह कर्त्तव्यच्युत नहीं होती। प्रसादजी के ये पात्र सबसे अधिक जीवन्त और मर्मग्राही है, इसलिए उनके साहित्य के अन्तर्गत प्राप्त ये प्रसग ही सर्वाधिक सहृदय संवेद्य हैं।

इसीप्रकार के और अनेक प्रकरण 'प्रसाद-साहित्य' में यत्रतत्र बिखरे हुए हैं, जहाँ हृदय (भावना) और मस्तिष्क (कर्त्तव्य) प्रतिकूल आचरण करते हैं अथवा जहाँ अन्तर की कोमलता किसी पर समर्पित होना चाहती है, पर विवेक उसे बाधित करता है। कामायनी (लज्जासर्ग) में श्रद्धा के अन्तर्द्वन्द्व में भी यही अन्तस्संघर्ष दिखाई देता है। श्रद्धा और इड़ा इन्हीं अर्थों में भावना (हृदय) और बुद्धि की प्रतीक मानी गयी है। कर्त्तव्य और भावना के द्वन्द्व का यह एक शाश्वत स्वरूप है।

११. प्रेम द्रोह को पराजित करता है:—

प्रसाद-साहित्य में ऐसे अनेक दृष्टांत हैं, जैसे—वाजिरा और अजात का प्रेमसबंध, जनमेजय एव नागकुमारी मणिमाला का मिलन तथा चन्द्रगुप्त कार्नेलिया का प्रेमसबंध। यह प्रेम व्यक्तिगत उत्तेजना को शान्त करता है, उनके वैयक्तिक जीवन की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है और चित्त को सुस्थिरता प्रदान करता है। यह विग्रह भावों को सन्धिमूलक बनाता है। प्रसाद के अनुसार यह प्रेम मूलतः लोकसाम्प्रदिक और समष्टिमूलक होता है।

१२. रोमांस और प्रेम भिन्न:—

प्रसाद-साहित्य में सात्विक प्रेम के अतिरिक्त रोमांस के भी कई चित्र हैं, पर प्रसादजी ने रोमैण्टिक प्रेम को अनिष्टकारी सिद्ध किया है, क्योंकि रोमांस प्रायः वासना विपाक्त होता है। 'कामायनी' में प्रजापति मनु इसी वृत्ति से प्रेरित होकर अपनी 'प्रजा'

इडा के प्रति कामोद्दीप्त हो उठते हैं। उनके मानस का उद्वेलित अन्तर्नाद सुनकर इडा आपत्ति प्रकट करती है, किन्तु 'अतृप्त-असंयत' मनु कामान्ध होकर यही कहता जाता है —'प्रजा नहीं तुम मेरी रानी. .... . .

कहो प्रणय के मोती अब चुनली हूँ मैं।" (कामायनी-१८४)

प्रसाद के अनुसार प्रकृति सौन्दर्य रोमैंटिक वृत्ति को उत्तेजित करता है। कामायनी के वासना, कर्म और संघर्ष आदि सर्गों की लुभावनी प्रकृति मनु को इसीलिए उत्तेजनशील प्रतीत होती है। उन 'मुस्कुराती रातों की शीतल छाया' के सुख साधनों से उसका "मन उन्मद और काया शिथिल' हो जाती है। इडा के प्रतिरोध से उसका नर-पशु हुंकार उठता है। इस प्रकार का रोमांस सदैव आत्मघातक दिखाया गया है। प्रसाद ने इसे उपद्रवों का हेतु माना है। जैसे 'जनमेजय का नागयज्ञ' में मातृरूपा गुरुपत्नी दामिनी अपने पुत्ररूप शिष्य उत्तंक से कुत्सित प्रस्ताव कर आतीय जीवन सर्वनाश कराती है। इससे स्पष्ट है कि प्रसाद-साहित्य में ग्राम्य रोमांस मर्यादाविहीन पाशवृत्ति मात्र है, जिसकी कालान्तर में प्रायश्चितपूर्ण परिणति दिखाई गई है।

रोमांस को उद्दीप्त करने में मांसल 'सौन्दर्य कारणभूत है। यह शरीरी, ऐन्द्रिय तथा स्थूल भावों को जन्म देता है। क्योंकि कथा विजया स्कन्द की 'सुन्दर मूर्ति' को देखकर जब आकर्षित हो जाती है तो रोमैंटिक प्रेरणावश युवराज के सामने उसका मन डोला हो जाता है। कालान्तर में वह कभी पुरुगुप्त के विलास की सहचरी बनती है, कभी नायक सर्वनाम से अपनी मनो कामनाएं प्रकट करती है और कभी भटार्क के साथ दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित करती है। स्कन्दगुप्त जब देवसेना के वियोग में अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा कर लेता है तो विजया उससे पुनर्प्रस्ताव करती है। वह 'अपना भरा हुआ यौवन और प्रेमी हृदय विनास के उपकरणों के साथ प्रस्तुत' करना चाहती है, परन्तु अन्त में आत्महत्या करने को विवश होती है।

इस प्रकार का रोमांस आत्मनाश करने के साथ साथ व्यापक जनसंहार करता है। स्पष्ट है कि प्रसादजी ने जहां रोमांस को परिष्कार को योग्य नहीं माना है, वहीं उन रोमैंटिक पात्रों का अन्त करा दिया है।

रूप का गर्व भी व्यक्ति को प्रायः रोमैंटिक बना देता है। 'अजातशत्रु' में उदयन की रूपगर्विता रानी मागन्धी इसका उदाहरण है (अजातशत्रु–७२, ६६) रोमांस और पुनीत प्रेम का द्वन्द्व 'कामना' में विशेषत: द्रष्टव्य है। शांतिदेव की विधवा लालसा अपने जीवन के एक रोमैंटिक संगी के लिए व्याकुल होकर विपथगामिनी बन जाती है। उसके मन में रानी बनने की महत्त्वाकांक्षा जाग्रत हो जाती है, अतः अपनी रूप सज्जा और वेश–भूषा को सँवारती हुई वह ऐन्द्रजालिक युवक विलास को आकर्षित करती है। लालसा और विलास दोनों का यह ऐन्द्रिय संयोग समस्त द्वीपवासियों को पथभ्रष्ट कर देता है। (कामना–६४) प्रसादजी के ये रोमांच–विह्वल पात्र अन्ततोगत्वा पश्चात्ताप से पीड़ित होकर आत्मग्लानि करते हुए दिखाई देते हैं।

इसी प्रकार 'राज्यश्री' में मालिन सुरमा जीवन की इस लम्बी दौड़ में अभिलाषाओं के लिए चन्चल होकर कामांध हो जाती है। वह शान्तिदेव से अपने प्राणों की भूख तथा आँखों की प्यास को शान्त करने की आराधना करती है। उससे असन्तुष्ट होकर फिर देवगुप्त की ओर बढ़ती है। देवगुप्त उसे यौवन स्वास्थ्य और सौन्दर्य की छलकती हुई प्याली समझकर अपनी भोग्या बनाता है। सुरमा वर्तमान जीवन के इस इन्द्रजाल से भावविमुग्ध हो जाती है, किन्तु अपने इन कुकृत्यों से प्रताड़ित और विकटघोष के भीषणनाद से भयभीत होकर वह शान्तिभिक्षु से क्षमा माँगती है। इस प्रचण्ड ताण्डव के बाद देवी राज्यश्री के क्षमादान से प्रभावित होकर वह शुद्ध बुद्धी सहित काषाय ग्रहण करती है।

प्रसादजी ने रोमांस में निष्ठा (एकपत्नीव्रत, पातिव्रत) का अभाव दिखाया है और उसे स्वच्छन्दतामूलक कामचार की संज्ञा दी है। 'कंकाल' में घण्टी के प्रति बाथम नवाब तथा विजय का आकर्षण इसी स्वच्छन्दता का उदाहरण है। 'तितली' में बाबू श्यामलाल का अनवरी और मैना के साथ ऐन्द्रिय सम्बन्ध इसीप्रकार का गर्हित तथा स्वच्छन्द रोमांस माना जायगा। प्रसाद की कहानियों में इस प्रकार के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं, जिनसे स्पष्ट है कि रोमांस लेखक का अभिप्रेत नहीं है। प्रसादजी ने "एकघूँट" में मुक्त भोग और स्वच्छन्द प्रेम की इस समस्या का बड़ा सुन्दर निदान

तथा समाधान प्रस्तुत किया है। उनके मतानुसार प्रणयव्यापार अनावश्यक स्वच्छन्दता के कारण कलुषित हो जाता है, उसमें एकनिष्ठता और दृढ़ आस्था नहीं रह जाती। अनेकांगी प्रेम के कारण त्रिकोणात्मक प्रेमद्वन्द्व चलने लगता है और प्रतिशोध, कपटाचरण-आदि की लपटें उठने लगती हैं। अस्तु प्रसादजी के साहित्य में इस प्रकार की अनेक घटनाएं आयोजित की हैं, जिनमें रोमांस का प्रत्याख्यान और पुनीत प्रेम की प्रतिष्ठा की गई है।

१६. प्रेम का स्वरूप—परिणाम :—

प्रसाद साहित्य में पुनीत प्रेम की परिणति प्रायः दाम्पत्य में हुई है। उन्होंने *(रोमांस) को भी विवाहित जीवन में घटित कराने का यथाशक्य प्रयास किया है।* इसकी प्रक्रिया 'तितली' में द्रष्टव्य है। तितली की शैला, जो लन्दन की एक भिक्षुणी और फिर वहीं के प्रवासी भारतीय विद्यार्थियों की दासी थी, इन्द्रदेव के साथ भारत आकर पहले मित्र रूप में रहती है। धीरे-धीरे वह ग्राम्योत्थान-योजना में एक कर्त्तव्यशीला महिला के रूप में कार्य करती है। बाबा रामनाथ के सम्पर्क से वह *भारतीयता के निकट आती है। तितली जैसी ग्रामीण बालिका का सौहार्द उसे सेवा-*परायण बना देता है वह अध्यात्म और दर्शन का अध्ययन-मनन करती है और तब उसका मैत्री-भाव दाम्पत्य-भाव में परिणत हो जाता है। इससे प्रकट होता है कि *प्रसादजी ने नर-नारी के मैत्री भाव को स्वच्छन्द न रखकर प्रायः दाम्पत्य प्रेम के रूप में पर्यवसित कर दिया है। प्रसादजी ने परिणय में प्रणय को भी आवश्यक माना है।* उन्होंने दुर्बल द्वारा सम्पन्न विवाह का खण्डन किया है। इस तर्क का एक सबल प्रमाण 'ध्रुवस्वामिनी' में द्रष्टव्य है। 'ध्रुवस्वामिनी' का विलासी एवं "क्लीव" रामगुप्त चन्द्रगुप्त के स्थान पर ध्रुवदेवी से विवाह कर लेता है। कालान्तर में रानी की अन्यमनस्कता और शकराज के आतंक वश वह अपने दायित्व की उपेक्षा करके अपनी परिणीता रानी को उपहार की वस्तु समझकर उसके सतीत्व की रक्षा नहीं करता, बल्कि उसे परम कामिनी बनकर स्वयं आदेश देता है। ऐसी स्थिति में ध्रुवदेवी का पूर्व वरेण्य प्रिय रामगुप्त का अनुज कुमार चन्द्रगुप्त महादेवी का सतीत्व-

सम्मान-रक्षण करता हुआ शकराज का वध करता है। उसकी मनस्विता एवं शौर्य से आकृष्ट होकर, ध्रुवदेवी रामगुप्त से सम्बन्ध विच्छेद करके शास्त्रमुग्ध पुरोहित तथा सामन्त-कुमारों की आज्ञा से चन्द्रगुप्त को वरण करती है। प्रसादजी ने इस प्रकार के प्रेम प्रेरित पुनर्विवाह को शास्त्रानुमोदित घोषित किया है, जो उनके युग के लिए निश्चय ही एक क्रान्तिकारी कदम था।

वैवाहिक दायित्व से भगन वाले लोकभीरु तथा जातिधर्म परायण पात्रों का भी प्रसादजी ने अन्तर्जातीय प्रेम विवाह सम्पन्न कराया है। 'कंकाल' का ब्रह्मचारी मंगल अपनी पाठशाला में गाला के साथ अध्यापन करता हुआ, उस त्यागशील आश्रम-जीवन में आदर्श सहयोगी जीवन चलाता हुआ, तथा वर्षोपूर्व लोक आतंकवश अपनी परिरक्षिता-प्रेमिका (तारा) के परिणय सूत्र को खण्डित कर देने के कारण कठोर प्रायश्चित्त करता हुआ भी अन्तत. बिना विवाह बन्धन में बन्धे नहीं रह पाता। लेखक ने यगेज और बर्थ्रो की इन सन्तानों (गाला-मंगल) का विवाह सम्पन्न कराकर जाति धर्म निरपेक्ष सात्विक प्रेम विवाह को मान्यता प्रदान की है। इस दृष्टि से चन्द्रगुप्त भी उल्लेखनीय है। 'चन्द्रगुप्त' में लेखक ने विधर्मियों और विदेशियों (कार्नेलिया) के प्रणय को भी परिणय में परिणत किया है। इसीप्रकार गान्धीक नरेश की लाडली पुत्री मलका देशोन्नति की शुभचिन्तिका होने के कारण एक बार गृहत्याग करके चली जाती है, पर सिंहरण की ओजस्वी मूर्ति, और उसके 'वन्यनिर्झर के सम्मान वेगवान' हृदय की मनस्विता के प्रति आकर्षित होकर युद्ध क्षेत्र में उसके साथ यौधेय कार्य करती हुई अन्त में उसकी सौभाग्यवती गृहिणी बन ही जाती है। इससे प्रकट है कि प्रसादजी के मतानुसार परिणय की उत्कृष्ट परिणति है।

प्रसादजी ने प्रेम के प्रभाववश शत्रु पक्ष में भी परस्पर विवाह सम्बन्ध सम्पन्न कराए हैं—जैसे अजातशत्रु-वाजिरा, जनमेजय-मणिमाला, चन्द्रगुप्त-कार्नेलिया आदि। प्रेम के अभाव में उन्होंने मन्त्रपूत विवाहों को खण्डित होता हुआ भी दिखा या है। कहीं-कहीं परमपवित्र और निष्काम प्रेम को भी उन्होंने अपरिणीत रख दिया है, जैसे—देवसेना-स्कन्दगुप्त बुद्धगुप्त-चम्पा आदि। यत्र तत्र उन्होंने प्रेम के समस्त

विवाह को व्यर्थ भी सिद्ध किया है। यहाँ प्रसादजी ने अविवाह की समस्या भी उठाई है। 'कंकाल' का विजय अपनी भोग्या और प्रेमसी घंटी से विवाह के प्रश्न पर विचार करता हुआ कहता है —

'जो कहते हैं अविवाहित जीवन पाशव है, उच्छृंखल है, वे भ्रांत हैं। हृदय का सम्मिलन हो तो ब्याह है मन्त्रों का महत्त्व कितना ।"

किन्तु यह स्मरणीय है कि विजय प्रतिवादी है, प्रतिनिधि पात्र नहीं। आनुपातिक दृष्टि से देखा जाए तो यही स्पष्ट होगा कि प्रसादजी ने प्रणय को परिणय रूप में अन्तघटित करने का प्रयत्न किया है।

इस प्रकार प्रकट है कि प्रसाद का प्रेमदर्शन सर्वांगीण है। उन्होंने केवल व्यावहारिक रूप में ही नहीं, बल्कि एक 'मिशन' के रूप में इस प्रेम-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। प्रसाद का यह प्रेमादर्श सर्वथा अभूतपूर्व है।



प्रसाद की सौंदर्य-संचेतना

सौंदर्य स्वरूप-विश्लेषण:

व्युत्पत्यर्थ के अनुसार सौंदर्य की अनेक परिभाषाएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं. उदाहरणार्थ–सु+उन्द+अरन् अर्थात् वह वस्तु जो द्रष्टा को रसार्द्र करती है। प्रसादजी ने सौंदर्य की व्याख्या करते हुए इस अर्थ की ओर सकेत किया है, जैसे—

'नयनों के नीलम की घाटी जिस रस घन से छा जाती है..।(कामायनी–१०१) यह रसार्द्रता आनन्दानुभूति की प्रतीक है। प्रसाद ने सौंदर्य और आनन्द का घनिष्ठ सबंध स्थापित किया है। सौन्दर्यशास्त्रियों के अनुसार सु+नन्दपति शब्द से बना सौंदर्य स्वाभावतः आनन्ददायक होता ही है, इसीलिए 'एस्थेटिक्स' को 'नन्दतिकशास्त्र' भी कहा जा रहा है और 'एस्थेटिक ज्वाय' की सर्वत्र व्याख्या की जा रही है। वस्तुत सुन्दर और आनन्द की एकाकार परिणति ही सौंदर्य है। आचार्यों ने इसे 'चित्त द्रवीभावम-योऽह्लादो माधुर्यमुच्यते' और 'रमणीयता च लोकोत्तराह्लादजनक ज्ञानगोचरता' कहा है। आचार्य शुक्ल ने 'बहुत ही ऊँचे प्रकार का सुख देने वाली वस्तु का नाम सुन्दरता' (रसमीमांसा–२६) घोषित किया है। प्रसिद्ध सौंदर्यशास्त्री सान्तायन ने स्पष्ट कहा है कि 'जो आनन्द न दे सके वह सुन्दर नहीं...।' (द सेन्स आफ ब्यूटी–५९) इसी प्रकार काण्ट ने इसे आनन्दानुभूति माना है और रिचर्ड्स ने इसे शाश्वत जीवनानुभूति से सम्बद्ध कर दिया है। इसी विचारक्रम में प्रसादजी की वे उक्तियाँ स्मरणीय हैं, जिनमें उन्होंने काव्य को संकल्पात्मक अनुभूति घोषित कर उसे बुद्धिवादी और दुःखवादी हेतु से मुक्त किया है। उनके अनुसार 'सौंदर्य' 'आनन्द सुमन सा विकसा' (कामायनी–१११) दिखाई देता है।

प्रसाद-साहित्य में 'सुन्दर' और 'सौंदर्य' शब्दों के अनेक प्रचलित पर्यायों का प्रयोग प्राप्त होता है, जैसे–लावण्य, रम्य, रमणीयता, शोभा, शोभन, शोभनित, ललित,

ललाम, मनोज्ञ, मञ्जु मंजुल, मधुर, मधुरिमा, माधुर्य, प्रकाम्य, कमनीय, कान्त, मनोरम, मनोहर, रुचिकर, रुचिमान, रुचिर, सुभग, सुषुम, चारु, सुघर, अभिराम, भव्य, छविमान, छविधाम, दिव्य, उदात्त, आदि। वस्तुतः ये सौंदर्य के समानार्थी हैं भी। उदाहरणार्थ—

'सुन्दरम् रुचिर चारु सुषम चारु शोभनम्।

कान्त मनोरम रम्य मनोज्ञम् मञ्जु मञ्जुलम्॥" (अमरकोष–३-१-५३)

स्पष्टतः प्रसाद की सौंदर्य सम्बन्धी शब्द–सम्पदा पर्याप्त समृद्ध है।

प्रसादजी के अनुसार सौंदर्यानुभूति जिजीविषा की पूरक है वह युयुत्सा, सर्जेच्छा और जीवन लालसा को उद्दीप्त करती है। सौंदर्य प्रमाता को मन शान्ति प्रदान करता है, भावोत्तेजित एवं सम्मोहित करता है और मनस्समाधि में परिणत हो जाता है। प्रसाद का सौंदर्य पर्याप्त गूढ़ है। उन्होंने इसका उद्रेक प्राणसत्ता में माना है। सौंदर्य की एक व्युत्पत्ति असून+ददाति (जो प्राणों को दे) के अनुसार सौंदर्य अतीन्द्रिय और चिदाकाश में व्याप्त है। इसी आधार पर काण्ट ने इसे 'ट्रान्सडेण्टल (सौन्दर्य मीमांसा–११) माना है। प्रसादजी ने सौंदर्य को भौतिक जीवन के ऊपर प्रतिष्ठित किया है। उन्होंने यांत्रिकता, औद्योगीकरण अर्थात् उपयोगितावादी दृष्टि को विकृति का हेतु माना है और 'कामना' तथा 'कामायनी' (संघर्ष सर्ग) में इस यांत्रिक सौंदर्य का स्पष्ट प्रत्याख्यान किया है।

प्रसादजी का सौंदर्यबोध मूलतः ऐन्द्रियबोध अर्थात् रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द गत आनुभूतिक प्रतीति पर आधारित है। उन्होंने "सुरम्यागस्य यथाविधि' सूत्र के अनुसार आंगिक रूप को ही महत्ता दी है। श्रीमद् यशोराजमौली ने सौंदर्य को अंगों का यथोचित सन्निवेश माना था—'अवेर्स्सौंदर्यमंगानाम् सन्निवेशो यथोचितम्'। प्रसादजी ने भी आंगिक रूपबोध को सौंदर्य का मूलाधार घोषित किया है। अंगों की भंगिमा उन्हें सर्वाधिक प्रिय है। वे सौंदर्य के एक शब्द 'भामिनी', जिसका सुन्दर का अर्थ है–'भुवम्'+राति अर्थात् भौंहों की तरह चमकने वाला, कटाक्ष करने वाला" के भी समर्थक हैं। स्पष्टतः प्रसाद का कवि इसकी विविधता का चमत्कार है। वे सुकुमारता, मौग्ध्य,

सलज्जता, विस्मय-विमुग्धता, अलसता और सकरुण सौंदर्य-मुद्राओं के प्रति आकृष्ट है। उन्हें कैशोर, बाल्य, तारुण्य आदि वय सौंदर्य-रूप विशेषत: अभिप्रेत हैं। प्रसादजी सौंदर्य के दिव्य रूप का भी आकांक्षी रहे हैं। उन्होंने हासोन्मुखी रूप को कलात्मक आकार देकर गुणात्मक कर दिया है और दूसरी ओर सौंदर्य को प्रसाधन-कला का साहित्य तत्त्व व। सामाहार भी सिद्ध किया है। अस्तु सौंदर्य सम्बन्धी उनका यह शास्त्रीं विवेचन एवं मौलिक चिन्तन इस सन्दर्भ में विशेषत: विचारणीय है।

प्रसाद का सौन्दर्य-चिन्तन:

प्रसादजी के अनुसार सौंदर्य अत्यन्त रहस्यावृत्त, कुतूहलपूर्ण और मायामय है। कवि के शब्दों में सौंदर्यमयी चंचल कृतियाँ, सदैव आँखों के सामने रहस्य बनकर नाचती रहती हैं। यह 'अक्षयनिधि' एक ऐसी अन्तस्सलिला जैसी है, अत: इसको पहचान सकना दुष्कर है वस्तुत. प्रसाद ने सौंदर्य को 'परदे में आवृत्त' दुर्भेद्य और अतीन्द्रिय स्वप्नलोक का मधुर रहस्य' कहा है और हृदय सत्ता का सुन्दर सत्य (द्रष्टव्य कामायनी–६६, ६६, ३५, ५१) आँसू के कवि ने सौंदर्य को ऐसा 'छायानट' कहा है जो छवि के परदे में सम्मोहन वेणु बजाता हुआ अपना कौतुक-कुहुक करता रहता है। (आँसू–३३) प्रसादजी ने इस सौंदर्य को ऐसा 'नूर' घोषित किया है, जिसके तीव्र आलोक से आँखें चकाचौंध खा जाती हैं रूप दिखा-अनदिखा रह जाता है, अर्थात् वह न तो पूर्णत: प्रकट हो पाता है। और न अदृश्य ही रहता है, बल्कि उसका रहस्यमय 'आकार रूप का नर्तन' (कामायनी–७१) करता सा प्रतीत होता है। कामायनीकार ने इस आलोकरूप को आँखों का स्वत: अवगुंठन कहा है—'अवगुंठन होता आँखों का आलोकरूप बनता जितना' (कामायनी–६५) उन्होंने 'सुन्दरता की इठोलिए' मायाविनि रहस्यमयी' आदि सम्बोधन दिए हैं। श्रद्धा को कवि 'विश्व माया कुहुक सी साकार' (कामायनी–६०) एवं 'प्राणसत्ता का मनोहर भेद, मानकर सम्बोधित करता है— × ' कौन करुण रहस्य है तुममें छिपा छविमान' (कामायनी–८६) सौंदर्य की यह रहस्यात्मकता ही उसके प्रति आकर्षण या भावाकुलता उत्पन्न करती है। स्पष्ट है कि यह ऐन्द्रजालिक सौंदर्यवृत्ति छायावृत्ति जैसी ही गूढ़ है।

प्रसादजी के अनुसार सौंदर्य सदैव प्रकाम्य है। वह एक प्रखर और विलासमयी जीवन-लालसा' (कामायनी-२८) है। इस आकर्षण से शून्य व्यक्ति आत्म विस्तार नहीं कर सकता। यह काम मंगल से मण्डित है, सृष्टि का हेतु है और जड़ चेतन का आनन्द भी। सौंदर्य की कामना हृदय में मूर्च्छना समान' मचलती हुई प्राणों को 'अधीर' कर देती है। (कामायनी-१०१) यह नव नवादि वासना रूप में द्वन्द्व (युग्म) की सुखद कल्पना करती है। (कामायनी-३५) रति रूप प्राप्त कर यह भूख प्यार सी जग जाती है आकांक्षा और तृप्ति का समन्वय करती है और इस प्रकार 'प्राणों की भूख' का उपशमन करती है। कामोत्तेजित मनु का उद्विग्न हृदय श्रद्धा की रूप सुषमा को देखकर मुग्ध शान्त हो जाता है—'देखकर वह रूप सुषमा मनु हुए कुछ शान्त (कामायनी-८५) श्रद्धा भी हिमालय के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर स्वयं को परितृप्त अनुभव करती है—'आँख की भूख मिटी यह देख आह कितना सुन्दर सम्भार' (कामायनी-५१) प्रसाद के अनुसार प्रकृति सौन्दर्य और विशेषतः रमणी रूप के सामने मानवीय महत् अह्‌म भाव लोटने लगता है। (कामना-७०) यही नहीं, उन्होंने मन की मदोन्मत्तता और वासना के विष को सौन्दर्य के प्रेमामृत में तिरोहित कर इसे एक वरदान सिद्ध किया है। सौन्दर्यानुभूति की प्रक्रिया का विश्लेषण करते हुए उन्होंने इसी तथ्य की ओर संकेत किया है—

> 'विष प्याली जो पीली थी वह मदिरा बनी नयन में।
> सौन्दर्य पलक प्याले का अब प्रेम बना जीवन में।' (आँसू-३२)

कवि के अनुसार विषाक्त वासना कायिक मोह और दृष्टिगत आकर्षता उत्पन्न करती है। जबकि सौन्दर्य प्रेम में परिणत हो जाता है। उसने एक अन्य रूपक द्वारा काम, प्रेम तथा सौन्दर्य को परस्पर पूरक स्वीकार किया है—

> 'कामना सिन्धु लहराता छवि पूरणिमा सी छायी।
> *रत्नाकर बनी चमकती मेरे शशि की परछाईं।* (आँसू-३३)

कवि के मतानुसार कामनाएँ अनन्त हैं और सौन्दर्य भी पूर्णिमा की भाँति आदिगन्त व्याप्त है। इन दोनों के मध्य सुशोभित है—सौन्दर्य 'शशि' (प्रिय)। इसमें आकृष्ट

होकर मर्यादा का सिन्धु भी हिल्लोलित हो उठता है। तात्पर्य यह है कि सौन्दर्य स्वभावत: सम्मोहनशील है। आँसू के कवि ने 'चन्द्र चकोर' की प्रौढ़ोक्ति को दुहराकर इसी मत की पुष्टि की है। (आँसू-४३) यह उल्लेखनीय है कि प्रसादजी ने 'मेरे शशि की परछाईं' कहकर चन्द्रमा को नहीं, बल्कि उसके प्रतिबिम्ब को सुन्दर कहा है। यही उनकी 'छायावृत्ति' है। प्रसादजी के अनुसार प्रत्यक्ष सौन्दर्य की अपेक्षा उसकी प्रतिच्छवि अधिक आकर्षक होती है, क्योंकि प्रत्यक्ष सौन्दर्य दुस्सह होता है। उसके समक्ष तो दृष्टि ठहरो हो नहीं-पाती है। निरावृत्त सौन्दय चकाचौंध उत्पन्न कर देता है, फलत, आँखें थक जाती हैं और मन में मूरछना सी भर जाती है—'आलोक सभी मूर्छित सोते यह आँख थकी सी रोती है।' इसके विपरीत सौन्दर्य की प्रतिच्छाया सुसह्य होती है। वह अपनी सगोपन वृत्ति के कारण और आकर्षक हो जाती है। अस्तु स्पष्ट है कि प्रसाद की सौन्दर्यवृत्ति और छायावृत्ति एकात्म है।

प्रसादजी ने सौन्दर्य को जीवन का 'मधुर भार' (कामायनी-६१) माना है। उन्होंने इसे प्रेम, यौवन और काम से समन्वित कर दिया है और इसमें जीवन-सर्वस्व को समाविष्ट कर लिया है। 'प्रतिध्वनि' में एक स्थल पर उन्होंने सौन्दर्य को मात्र उपासना की ही वस्तु न मानकर उपभोग की वस्तु भी घोषित किया है। कामायनीकार के अनुसार इस सौन्दर्य मे कलरव-कोलाहल अर्थात् चहल-पहल, इसमें विद्युत का जैसा प्राणोन्माद है, यह अनुराग सुहाग और मचल कुसुम की यो से परिपूर्ण है। इसमे जीवन की हरियाली और ताजगी है। यही सौन्दर्य 'आनन्द सुमन' को विकसित करता है अर्थात् यही हर्षोल्लास का हेतु है। आन्तर संगीत की तरह यह सौन्दर्यानुभूति प्राणों को झंकृत कर देती है यही नेत्रों में रसानुभूति जाग्रत करती है और यही संतप्त मन को शांति, शीतलता एवं शुभ्रता प्रदान करती है। इस सौन्दर्य म कवि ने ऋतुपति का सा हिल्लोल (आनन्दविलास) गोधूलि वेला की सी ममता (मातृत्व) प्रभातकालीन जागरण (नव्य जीवन चेतना) और मध्याह्न की सी प्रखरता (यौवनउन्माद) का आयोजन किया है। कामायनीकार ने इस नवन चन्द्रिका सा सुस्निग्ध और चमत्कृतिपूर्ण माना है। यह सौन्दर्य फूलों की पखुड़ियों सा कोमल, मकरद सा रसमय और पत्रों के

मर्मर सा सुख-संगीतपूर्ण है। कवि ने इसे अनन्त अभिलाषाओं का प्रपूरक और 'चेतना का उज्ज्वल वरदान' घोषित किया है। (कामायनी-१००, १०२) यह निश्चय ही एक गूढ़ उपपत्ति है। कामायनी (लज्जा सर्ग) में वर्णित यह सौंदर्य-महिमा प्रसादजी के सौंदर्यबोध की साक्षी है, अस्तु सविस्तार विचारणीय है।

प्रसाद ने सौंदर्यानुभूति को एक शुभ जीवन-चेतना के रूप में प्रतिष्ठित किया है। उनके अनुसार परिवर्तित व्यक्तियों को चर्म 'सौंदर्य के चपल आवरण (लहर-८०) की यह सत्ता भले ही विक्षुब्ध कर दे, यों सत्सौंदर्य सत्य-शिव होने के कारण 'पापवृत्ति' से दूर है। उन्होंने इसे अगभूत या रूपात्मक माना है, पर इसकी अनुभूति को चेतना की देन कहा है। उनके अनुसार सौंदर्य जितना वस्तुनिष्ठ है, उससे अधिक वह आत्मनिष्ठ है। बाह्य वस्तुएं जब प्रमाता की दृष्टि से समात्मभाव स्थापित करती हैं, तभी वे सुन्दर प्रतीत होती हैं। कवि ने नेत्रों को ऐसा सांचा माना है जिसमें ढलकर रूप-कुरूप सब रमणीय बन जाते हैं—आँखों के सांचे में आकर रमणीय रूप बन ढलता सा। (कामायनी-१०१) सौंदर्य की अनुभूति सामान्यतः ऐन्द्रिय है और मुख्यतः चाक्षुष भी। कवि अपलक दृष्टि से जब सौंदर्य का साक्षात्कार करता है तभी प्रतिभा का उद्रेक होता है—"मैं अपलक इन नयनों से निरखा करता उस छवि को।

प्रतिभा डाली भर लाता कर देता दान सुकवि को। (आंसू-१८)

यह निर्निमेष दृष्टि 'सौंदर्य समाधि' की सूचक है, इसे सौंदर्य की चेतना भी कहा जा सकता है। यह चेतना द्रष्टा को जो 'उज्ज्वल वरदान' देती है, वह है—सौंदर्य की अनुभूति। सौंदर्यानुभूति चूँकि एक नैसर्गिक देन है, इसलिए कवि ने इसे वरदान सदृश माना है, यह चूँकि सत्य तथा शिवत्व पूर्ण है, अतएव इसे 'उज्ज्वल' कहा गया है। कवि ने इस प्रकार के सौंदर्य को अनन्त अभिलाषाओं एवं स्वप्नों का प्रपूरक माना है। यही नहीं, प्रसाद के अनुसार 'मानव सौंदर्य' बोध के सहारे ईश्वरीय सत्य का अनुभव करता है (काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध-२४)। उनके शब्दों में, यह सौंदर्य वासना का परिष्कार करता है, अपनी मर्यादा के आवरण में चिरन्तन प्राणों को समेटकर जीवन के मान-मूल्यों की रक्षा करता है और स्पर्धा की वृद्धि करता है—

"वासना भरी उन आँखों पर आवरण डाल दे कांतिमान
जिसमें सौंदर्य निखर आवे..।" (कामायनी-१५१)

स्पष्ट है कि प्रसाद की सौंदर्यानुभूति वासना का उन्नयन और अन्तर्वृत्तियों का आध्यात्मीकरण करती है। इसी प्रयोजन की पूर्ति हेतु उन्होंने सौंदर्य की आयोजना अधिकांशत' प्रकृति के रम्य फलक पर की है। उनकी सुन्दरियाँ प्रायः प्रकृति के परिप्रेक्ष्य में अवतीर्ण हुई हैं। कवि ने इड़ा का प्रथम साक्षात्कार प्रत्यूष—वेला में कराया है और उसे 'नयन महोत्सव की प्रतीक' सिद्ध किया है दूसरी ओर उसने रूपाजीवा सुन्दरियों की अधोगति प्रदर्शित की है। निष्कर्ष यह है कि प्रसाद की सौंदर्यवृत्ति उज्ज्वल चेतना में एकाकार हो गयी है। उनका एक पात्र इसी कथन की पुष्टि करता हुआ कहता है—'जो कुछ सुन्दर और कल्याणमय है, उसके साथ यदि हम हृदय की समीपता बढ़ाते रहे तो संसार सत्य और पवित्रता की ओर अग्रसर होता हो। (तितली-२५६) प्रसादजी ने अन्यत्र भी स्वीकार किया है कि शारीरिक और आलंकारिक सौंदर्य प्राथमिक है, पर चरम सौंदर्य मानसिक सुधार का है (कंकाल-२६२) उन्होंने समरसता को सौंदर्य एवं रस की अभिव्यक्ति स्वीकार किया है और सौंदर्य को एक मानसिक भावात्मक प्रतिक्रिया कहा है, जो हेतु रहित है और संवेगात्मक भी। (काव्य और कला तथा अन्य निबंध-२६२) इस सौंदर्यानुभूति को लेखक ने आनन्दानुभूति से संयुक्त कर दिया है। उनके शब्दों मे-'विश्वचेतना के आकार धारण करने की चेष्टा का नाम जीवन है। जीवन का लक्ष्य सौंदर्य है। आनन्द का अन्तरंग सरलता है और बहिरंग सौंदर्य..। (एकघूंट-१५) प्रकट है कि प्रसाद का सौंदर्य एक सूक्ष्म अन्तःचेतना है, अस्तु उसे चेतना का उज्ज्वल वरदान कहना स्वतः सिद्ध है।

अन्त में, यह भी उल्लेखनीय है कि प्रसाद की सौंदर्यवृत्ति सत्य-शिव से अनिवार्यतः सम्प्रक्त है। उन्होंने इसे वैष्णवी मधुरोपासना, शैव आनन्द वाद की उन्मद साधना सन्तों के रहस्यवाद और पाश्चात्य दार्शनिकों के प्रकृतिवाद से संयुक्त कर दिया है। लेखक ने विश्वसुन्दरी प्रकृति में चेतना के आरोप को ही साहित्य कहा है और साथ ही सौंदर्य को संस्कृति से अविच्छिन्न माना है। उनके शब्दों में—'संस्कृति सौंदर्यबोध के विकसित होने की मौलिक चेष्टा है। प्रसादजी के मतानुसार यह सौंदर्यानुभूति चिरकाल

से प्रभावित होती हुई भी एक सार्वकालिक मानक सिद्ध होती है—'सौंदर्य सम्बन्धी विचारों का सतत अभ्यास एक विशेष प्रकार की रुचि उत्पन्न करता है, वही अनुभूति-सौंदर्य अनुभूति की तुला बन जाती है। (काव्य और कला तथा अन्य निबंध-१८) प्रसादजी ने इस सौंदर्य-चेतना को एक शुद्ध भारतीय प्रदेय कहा है और विदेशियों को सौंदर्यानुभूति के प्रचलित प्रतीकों को विकृत' कर देने वाला भी सिद्ध किया है। उनके अनुसार कृष्ण में नर-सौंदर्य की पराकाष्ठा है और ललिता में नारी सौंदर्य की। नर-नारी का यह आलम्बन शक्ति का स्रोत रहा है, अतः यह उपासना में भी प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार की सौंदर्य जिज्ञासा को उन्होंने सभ्यता का लक्षण सिद्ध किया है। (कंकाल-२८३) और इसे ईश्वरीय शक्ति एवं सत्ता के बोध का निमित्त भी माना है।

यह भी उल्लेखनीय है कि प्रसाद ने सौंदर्यबोध को सांस्कृतिक रुचिबोध तथा युगबोध से प्रभावित सिद्ध किया है। उन्होंने नारी उपालम्भ से सम्बन्धित गीत गाने और जहाँगीर द्वारा दिखाए जाने वाले कंकाल का उदाहरण देकर भारतीय एवं भारतेतर सौंदर्य-सिद्धांतों का अन्तर स्पष्ट किया है। यह ज्ञातव्य है कि उक्त उदाहरण इसी कथ्य-तथ्य का साक्षी है।

समग्रतः यह कहा जा सकता है, कि प्रसाद की सौंदर्य चेतना स्थूल देह एवं मांसलता से ऊर्ध्वोन्मुख होकर सूक्ष्म अध्यात्म में पर्यवसित हो गई है। पंतजी ने इसलिए उन्हें 'प्राणोन्मुखी रसिकता', 'नए सौंदर्यबोध' (छायावाद पुनर्मूल्यांकन-५०) और व्यापक सौंदर्यबोध की नवोज्ज्वलता (शिल्प और दर्शन-१२६) का श्रेष्ठ साधक सिद्ध करते हुए उनके सौंदर्यसिद्धांतों की सम्यक् परिपुष्टि की है। वास्तव में प्रसाद का सौंदर्य 'विराट का प्रतिबिम्ब' है, इसीलिए देह में अदेह है और मनोमय भी। यह उल्लेखनीय है कि अपने अमूर्त भावानयन के कारण ही उन्होंने माध्यमधर्मी सौंदर्यानुभूति को अधिक प्रश्रय दिया है वस्तुतः प्रसाद की दृष्टि में 'जहाँ जहाँ भी आत्मा का प्रकाशन है, वहीं सौंदर्य है।' उनके अनुसार जीवन धारा सुन्दर प्रवाह (कामायनी-२४१) है, वह चिति का विराट वपु है और सत्य सतत चिर सुन्दर (कामायनी-२८१) है। वे इसे प्रायः

'चिरसुन्दर' विशेषण देते भी हैं। (आँसू-४६) वस्तु यह शाश्वत सौंदर्यानुभूति काव्यानुभूति एवं छायानुभूति से अनुस्यूत है। प्रसाद ने जिस 'यौवन' को सौंदर्य कहा है (कामना-८३) उस वसना विच्छिति का छायावृत्ति से अभेदात्मक सम्बन्ध है। उनके अनुसार यह सौंदर्य एक 'विश्वव्यापी वस्तु' है (काव्य और कला तथा अन्य निबंध-२७) स्पष्ट प्रसाद सौंदर्यनिष्ठ कलाकार हैं। उन्होंने 'विच्छित्ति पूर्ण शृंगार से कला की सृष्टि' स्वीकार की है (इरावती-८०) निश्चय ही वे समन्वित छायावृत्ति और सौंदर्यवृत्ति के पुरस्कर्ता हैं और अनन्य सौंदर्यचेत भी।

प्रसाद का रूपबोध

प्रसादजी ने रूप को प्राकृत 'देह धर्म' के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने रूपवृत्ति के प्रति प्राय: लालसा व्यक्त की है। अपने एक पात्र के शब्दों में वे कहते हैं—"मैं तो केवल सुंदर रूप का दर्शन ही सदैव चाहता हूँ (छाया-३४) दूसरी ओर उन्होंने रूपाध पात्रों की वासनातिक्त मनोवृत्ति की अधोगति भी प्रदर्शित की है।। उनकी कई रूपसी नायिकाएं (रूपगर्विताएं) रूप की ज्वाला से अपने प्रेमी पतंगों को जला डालती हैं और अन्ततः स्वयं भी भस्मसात हो जाती है, जैसे 'अजातशत्रु' की श्यामा, 'स्कन्दगुप्त' की विजया, 'राज्यश्री' की सुरमा, 'जनमेजय का नागयज्ञ' की दामिनी, 'कामना' की लालसा आदि। सम्भवतः इन्हीं को लक्ष्यकर कवि ने रूप को घातक कहा है—

'नारी तेरा रूप यह जीवित अभिशाप है,' (लहर-७६) प्रसादजी ने दैहिक रूप को जड़ और वासना विपाक्त सिद्ध किया है। वस्तुतः देह सौंदर्य उदात्त सौंदर्य तक पहुँचने का सोपान है। कवि के शब्दों में रूप सौंदर्य का सिंधु सुधा-गरल दोनों से परिपूर्ण है। इसका चयन मात्र गृहीता पर निर्भर है। वासना विपाक्त मनु की भर्त्सना करता हुआ काम कहता है—"तुमने तो पाया सदैव उसकी सुन्दर जड़ देह मात्र।

सौंदर्य जलधि से भर लाए केवल तुम अपना गरल पात्र।" (कामायनी-१६३) प्रसादजी ने देह 'सौंदर्य को मादक और उत्तेजक सिद्ध किया है—'कैसी कड़ी रूप की ज्वाला' (चन्द्रगुप्त-१७६) × रूप सुधा के दो दृग प्यालों ने ही मति बेकाम की। (चन्द्रगुप्त-१८६) दूसरी ओर वे रूप को कोमल कल्याणकारी भाव भी मानते हैं।

उनके कथनानुसार—'नारी का रूप प्रकृति का अतमोहक प्रावरण है। उसका कार्य है—क्रूर पुरुषों में कोमल अनुभूतियों की सृष्टि।' (जनमेजय का नागयज्ञ–८७) प्रसाद का यह भी मत है कि 'हृदय का सौंदर्य ही आकृति ग्रहण करता है, तभी रूप में मनोहरता आती है।" तात्पर्य यह है कि वे बहिरंग रूप और अन्तरसौंदर्य को अन्योन्याश्रित मानते हैं। वे 'रूप से हृदय की गहराई नाप लेने के विश्वासी भी हैं। (आकाशदीप–८२) इसीलिए प्रसादजी ने रूप में माधुर्य सम्मोहन और मदोन्मत्तता का सन्निवेश किया है। साथ ही शक्ति एवं शील का भी।

कवि ने रूपबोध को ऐन्द्रिय अनुभूति रूप में स्वीकार किया है, पर उसका पर्यवसान प्रायः अतीन्द्रिय बोध में ही किया है। मनु अपनी विषम मनोदशाओं में भी श्रद्धा की 'रूप सुषमा' को देखकर शांत हो जाता है। उसे श्रद्धा 'हृदय की सौंदर्य प्रतिमा', छविधाम', 'छविमान' और 'छवि के सार से दबी' दिखाई देती है। श्रद्धा की छवि उसमें 'प्राणों को विश्राम' देती है। (कामायनी–५, ६२) यही नहीं उनका उदयन मल्लिका का 'मुख–चन्द्र' देखता हुआ 'अतीन्द्रिय लोक की कल्पना' कर डालता है और रूपबोध की पराकाष्ठा पर पहुंच जाता है। (अजातशत्रु–६७) कवि के 'सुन्दर' का रूप सर्वत्र अपनी चरमसीमा पर प्रतिष्ठित हुआ है—'माना कि रूप सीमा है, सुन्दर तब चिर यौवन में' (आंसू–२८) उसकी रूपग्राही चेतना पहले देहबद्ध दिखती है, पर धीरे-धीरे, 'हृदय सत्ता के सुन्दर सत्य' में परिणत हो जाती है।

प्रसादजी ने 'प्रिय दर्शन' को रूप अनिवार्य लक्षण माना है।

'... प्रिय दर्शन स्वयं सौंदर्य है। (कानन कुसुम–२७) उनके अनुसार रूप का प्रथम दर्शन दुर्बल व्यक्तियों को उसे जित कर डालता है। रमणी का रूप देखते ही विवेक अर्जमित ग्रहण पराभूत, चिंता विस्मृत और धमनियां प्रवेगपूर्ण हो जाती हैं। (कामना–८३) साथ ही 'मानस हृत्पन्न कोन' (कामायनी–५०) हो जाती है। चिंता निमग्न मनु श्रद्धा को देखते ही विस्मय–विमुग्ध हो जाते हैं–(कामायनी–४५) श्रद्धा का रूप उनको 'मदन का इन्द्रजाल' प्रतीत होता है। वे उसमें आवद्ध मग्न हो जाते हैं और अभिभूत भी। उनका मानसिक संताप कोमलता में परिणत हो जाता है। कालान्तर में वही रूप उन्हें

वासनोन्मुख बना देता है, पर अन्तत इसकी परिणति आनन्द में होती है। कवि ने रूप को 'सुषमा का मण्डल', 'नयन-महोत्सव' (कामायनी-१६५) कल्पना का प्रत्यक्ष, सम्भावना की साकारता अतीन्द्रिय, अतृप्त अभिलाषा का आनन्दनिकेत पूर्ण चन्द्रवैभव, यौवनराशि, समुद्र का जलस्तूप (कामना-७१) आदि सजाए दो हैं।

प्रसादजी ने अपवादरूप में यद्यपि यत्र-तत्र रूप की अवहेलना भी की है जैसे 'कामना' में उनका एक सैनिक पात्र रूपसी लालसा' को तिरस्कार करता हुआ, उसके देह-सौंदर्य का अवमूल्यन कर डालता है (कामना-१०७) फिर भी अधिकांशतः प्रसाद की कवि उनके निवृत्तिमार्गी व्यक्तित्व पर हावी है, यही कारण है कि उनका रसिक रूप आद्यन्त अक्षुण्ण दिखाई देता है स्पष्ट है कि प्रसादजी रूपोपासक कवि हैं। उनका सौंदर्यबोध पूर्णतः रूपाश्रित है। उनके ही शब्दों में-'सौंदर्यबोध बिना रूप के हो ही नहीं सकता'। वे स्पष्ट घोषित करते हैं कि 'आँखों' की प्रतिष्ठा रूप में है और रूप ग्रहण का सामर्थ्य, उसकी स्थिति हृदय में है। (काव्य और कला तथा अन्यनिबंध-३५) अपने साहित्य विकास-क्रम में वे पहले देह छवि में विभोर दिखते हैं और फिर देहातीत से हो जाते हैं। पहले वे आलम्बन के रूप से आक्रांत प्रतीत होते हैं, पर अंत में आश्रयधर्मी सौंदर्य में केन्द्रित हो जाते हैं। रूप का यह औदात्य, उनकी सौंदर्य साधना की चरम सिद्धि है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि उन्होंने प्रातिवश 'अपरूप' को कुरूपता न मानकर उत्कृष्ट रूप माना है। (कामायनी-६१) यों रूप सबंधी उनका चिन्तन महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः रूप-सौंदर्य उनकी अन्तश्चेतना का सर्वोत्कृष्ट प्रदेय है।

'प्रसाद' के रूप-सौंदर्य के मूलाधार :—

१. लिनमा—प्रसाद का आंगिक सौंदर्य मात्र प्राचीन कवियों के नखशिख-वर्णन की भांति परम्पराबद्ध ही नहीं है, बल्कि नितनूतन रुचिबोध से सवलित और प्रयोगशील है। उन्होंने परम्परित उपमान भी स्वीकार किए हैं और नए प्रारूप भी। कवि ने रूपश्री को विभिन्न कोणों, विविध मुद्राओं और विशिष्ट भंगिमाओं द्वारा उभारा है। इस एक्स्य सौंदर्य में उन्होंने सर्वाधिक महत्व दिया है—ललित भवगी, सुदम, लावगी

काया अर्थात् तनिमा को। यही कारण है कि प्रसादजी ने नारी शरीर की उपमा प्राय लतिका अथवा बल्लरी से दी है, उदाहरणार्थ—

'कमनीयता हुई एकत्र इस मेरी मधुमलतिका में। (लहर–६०)

×. खिली स्वर्णमल्लिका की सुरभित बल्लरी सी। (लहर–६१)

×'मधु लतिका सी नवल वर।' (कामायनी–८८)

×'मधु मालता की कली।' (कामायनी–१२६)

× कम्पित लतिका सी लिए देह।' (कामायनी–१४२) आदि।

स्पष्टत प्रसादजी ने 'दुबल काया से लावण्य वृद्धि' (इरावती–८०) स्वीकार की है।

आकार की दृष्टि से प्रसादजी को 'लम्बी उन्मुक्त काया (कामायनी–४५) प्रिय है। हाँ, मध्याकार भी उनके मनोनुकूल रहा है। आंगिक गठन की दृष्टि से उन्होंने साँचे में ढले शरीर की कल्पना की है, यथा—

'मेरे इस साँचे से ढले हुए शरीर के।' (लहर–६४)

गठन के उद्देश्य से प्रसादजी ने समता (सिमेट्री) वक्रता, भंगिमा विलासता मर्योद्यापादित अनाहत कुसुम (आकाशदीप–१२७) जैसी भंगिमा आदि को महत्व दिया है। उन्होंने कुछ अंगों की स्थूलता, पीनता या मांसलता और कुछ की सूक्ष्मता को प्रश्रय दिया है। इसी अभिप्राय से कवि ने विभिन्न उपमाओं का चयन किया है, जैसे कपोत, भृंगी, हंस आदि की ग्रीवा, खञ्जन, हरिणी के नेत्र, शुक नासा, भ्रू धनु कदम्ब घट सरोज आदि। इनके माध्यम से उन्होंने रूप–विन्यास एवं फार्म को प्रश्रय दिया है।

२ वर्ण दीप्ति —प्रसादजी ने अपनी रूपसी को 'ज्योतिमयी सिद्ध किया है। उनके सम्बोधन ज्योतिमयी', (कामायनी–७७) 'ज्योतिष्मती' (कामायनी–२६०) ज्योत्स्ना निर्भर' (कामायनी–८६) आदि इसी भाव के द्योतक हैं। कवि ने आँसू' की नायिका को 'चंचला स्नान चन्द्रिका', 'आलोक मधुर शोभा' तथा इन्द्रधनुष सदृश आभा' (आँसू–२४, ३४) कहकर इसी भाव की पुष्टि की है वस्तुत कवि सौंदर्य की दीप्ति से इतना अभिभूत है कि वह अपने 'छविमान' को अनिवार्यत प्रभावन बना ही देता है। उनकी श्रद्धा का मुखमण्डल इसीलिए 'अरुण रवि मण्डल' तथा 'लघु ज्वालामुखी के

समान और 'नित्य यौवन छवि से ही दीप्त (कामायनी–४७) है। मनु श्रद्धा की सौंदर्य-कांति से विस्मय-विमुग्ध होकर कह पड़ता है—

'दिव्य तुम्हारी अमर अमिट छवि नवल हेम लेखा सी ।' (कामायनी–२२२)

ज्ञातव्य है कि प्रसादजी ने वर्णदीप्ति को 'वर्ण-सौंदर्य' में परिणत कर दिया है और इसीलिए चम्पक गात्र, स्वर्ण मकरन्द, केशर द्युति, ज्योत्स्ना-प्रभा, विद्युल्लेखा आदि वर्ण-विशेषणों का प्रयोग किया है। उनकी नायिकाएं "पवित्र मंदिर की दीपशिखा सी ज्योतिमयी, (कंकाल–१४०) "चांदनी रात में पहाड़ से झरता निर्झर" (आकाश-दीप–४१) 'विद्युल्लेखा सी विभा", (छाया–२६) 'नक्षत्र मालिनी निशा को प्रकाशित करने वाले शरच्चन्द्र' (अजातशत्रु–४७) 'चन्द्रकांत मणि से स्निग्ध अंग' (लहर–६२) आदि की रूप-रचना की है। तात्पर्य यह है कि प्रसादजी को 'कांत वपु' (कामायनी-४६) अर्थात् सौंदर्य की ज्योति से जगमगाता हुआ रूप ही अभीष्ट है। उन्होंने उस रूप की कामना की है, जिसे देखकर आँखें चकाचौंध खा जाती हैं। मनु के शब्दों में श्रद्धा की यही रूपकांति वर्णित हुई है —

'ज्योत्स्ना निर्झर ठहरती ही नहीं यह आँख....।' (कामायनी–८६)

जिस रूप में यह तेज न हो उसे वे 'ज्योतिहीन कलुषित सौंदर्य' (लहर–८०) कहते हैं। कवि के अनुसार वह रूप, जिसमें पवित्रता की छाया नहीं रहती, मात्र सौंदर्य का 'चंचल भ्रम आवरण' है। प्रसादजी ने इसे 'सौंदर्यमयी वासना' (लहर–६६) घोषित किया है। इसी दीप्ति से प्रबुद्ध होकर उन्होंने 'सौंदर्य बिन्दु' की स्थापना की है और इसी सम्मोहन के कारण निरावृत्त रूप' की कल्पना भी कर ली है। कवि ने श्रद्धा के 'खुल रहे मृदुल अधखुले अंगों' (कामायनी–४६) का भाव-विभोर वर्णन किया है। इड़ा का सुषमा मण्डन भी उन्हें उज्ज्वलतम अर्थात् रूप की दिव्य विभा से विभूषित दिखता है। कवि ने इसीलिए उसे 'प्रकाश बालिके' (कामायनी–१८४) सम्बोधन दिया है। उसने नटराज के सर्वांग को भी 'ज्योतिमय', उज्ज्वल प्रकाश के कल्लोल से युक्त रजत गौर, आलोक पुरुष" (कामायनी–२५२) कहा है। स्पष्टतः उन्होंने रूप में भी अर्थात दीप्ति को सर्वाधिक महत्त्व दिया है और उसका दिव्य रूप-विधान किया है।

इस गौर वर्ण-प्रतीति के अतिरिक्त श्यामल कांति को भी प्रसादजी ने पर्याप्त प्रश्रय दिया है। उनकी अनेक नायिकाएँ साँवली-सलोनी और फिर भी अपूर्व शोभाशालिनी हैं जैसे 'आकाशदीप' की 'देवदासी', 'इन्द्रजाल' की बेला, कंकाल की घंटी आदि। किन्तु श्यामलता में भी लेखक ने उज्ज्वलता का सन्निवेश किया है, यथा—उज्ज्वल श्यामवर्ण की बालिका (आकाशदीप-७१) सौंदर्यगत वर्णप्रतीति का यह एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। अस्तु प्रकट है कि सौंदय की रूप-रचना में प्रसादजी ने वर्णश्री का भी यथोचित उपयोग किया है।

नर-नारी-देह विविध रूप

प्रसाद का अंग सौष्ठव बड़ा वैविध्यपूर्ण है। उन्होंने पुरुष सौंदर्य की अपेक्षा यद्यपि रमणी-रूप को अधिक प्रश्रय दिया है फिर भी पुरुष-सौंदर्य नितान्त निष्प्रभ नहीं है। प्रसाद की रूपसियों के कई स्तर हैं। उन्होंने जहाँ ग्राम्यनारी में आदिम सौंदर्य (वन्य लावण्य) की सृष्टि की है, वहीं आधुनिका के नागर रूप की भी। कवि जहाँ कुलवधू के सम्भ्रान्त सौंदय के प्रति आकृष्ट है, वहीं वारांगनाओं के उत्तेजक रूप के प्रति भी। यही नहीं उन्होंने यथाप्रसंग विरहिणी, उन्मादिनी गर्भिणी आदि नायिकाओं और उनकी सकरुण सलज्ज विस्मित सभय उल्लसित, स्वप्निल और अन्य अनेक सौंदर्य मुद्राओं या भाव भंगिमाओं को भी वाणी दी है। कवि ने नैसर्गिक रूप के साथ साथ उसका मण्डन भी किया है, साथ ही यत्र-तत्र सौंदय का उदात्तीकरण और विरूपन भी किया है।

नारी सौन्दर्य के अतिरिक्त पुरुषों के रूप चित्रण में कवि ने अपनी अभिरुचि प्रदर्शित की है। कामायनी में पौरुष से ओतप्रोत और अवयव की दृढ़ मांसपेशियों से युक्त मनु का जो स्वस्थ, स्फीत तथा ऊर्जस्वित व्यक्तित्व निरूपित किया गया है, (कामायनी-४) वह इस सन्दर्भ में स्मरणीय है। इसीप्रकार "कुश्तियों के व्यायाम घटित 'मांसल भुजदण्ड (इन्द्रजाल-११२) और हृष्टपुष्ट एवं बलिष्ठ युवा का चित्रण (चन्द्रगुप्त-१३०) करके प्रसादजी ने रूप-सौंदर्य की विविधता प्रदर्शित की है। यह रूपांकन वय सापेक्ष है। उन्होंने कठोर-बाल्य, तारुण्य आदि अवस्थाओं के सहज सौन्दर्य की मनोरमता

दी है और इस प्रकार नर-नारी देह के विविध रूपों को चित्रित किया है।

अंग-प्रत्यंग-सौन्दर्य

१- मुखश्री —मानव कलेवर के वे सारे अंग-प्रत्यंग प्रसादजी को प्रिय हैं, जो परिष्कृत भारतीय सौंदर्यबोध के विषय रहे हैं। उन्होंने आंगिक सौन्दर्य के प्रतिमान के रूप में मुखश्री को सर्वोपरि माना है कारण-मुख सौन्दर्य समवत सौंदर्य का सूचक है। मुखश्री का रूपांकन करते हुए कवि ने चक्षु भ्रू ललाट, कपोल, नासिका चिबुक, दशन अधरोष्ठ और केशराशि का समग्र निरूपण किया है प्रसादजी ने परम्परागत अर्थों में मुख कमल चन्द्रमुख आदि को उपमेयोपमान रूप में ग्रहण किया है, जैसे—

'शशिमुख पर घूँघट डाले ।' (आँसू-१६)

× मुखकमल समीप × विकसित सरसिज वन वैभव ' (आँसू-२३)

'गुंजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन ।' (कामायनी-१६८) आदि।

एक स्थल पर तो कवि ने मुग्ध मुद्रा की विभिन्न स्थितियों का रूपांकन करते हुए कई प्रकार के कमलों का उल्लेख किया है उदाहरणार्थ—

'जहाँ तामरस इन्दीवर या सित शतदल हैं मुरझाए ।' (कामायनी-१७५)

यहाँ तामरस है अरुणाधर, इन्दीवर है नील नयन और शतदल है-मुखमण्डल। प्रसादजी ने अन्यत्र किशोरमुख को अधखिला सरोज' (लहर-६२) कहा है। इन कल्पनाओं के अतिरिक्त कवि ने अरुण गोल मण्डल (कामायनी-४५) जैसे मुख की भी रूप-रचना की है। प्रसादजी ने गर्भिणी श्रद्धा का 'केतकी गर्भ सा पीला मुख', (कामायनी-१४८) देवों के 'सुरा सुरभि मय अरुण वदन' (कामायनी-११) और श्रम सीकरों से युक्त श्रान्त मुखच्छवि का मनोयोगपूर्ण रूपांकन किया है, साथ ही मुख को लावण्यधाम' तथा आंसों की निधि (आँसू-६८) घोषित किया है। वस्तुत मुखश्री ही उनके रूपबोध का केन्द्रबिन्दु और मध्यभूत उपांग है।

मुखमण्डल में अधर-दशन का सौंदर्य प्रसाद की दृष्टि से ओझल नहीं हो सका है उन्होंने अधरप्रान्त पर सुगाठित दन्तावली को विद्रुम सीपी सम्पुट में मोती के दाने (आँसू-२३) कहा है और स्मिति को 'कुन्द मंदिर' (कामायनी-८७) की संज्ञा प्रदान

की है। प्रसादजी 'नुकीलीनासा' और 'पतले पुटोंवाली फरकती हुई नुकीली नासिका (कामायनी-६४, १६८) पर मुग्ध दिखाई देते हैं। उनके काव्य में सुढरनासा' (झरना-२२) के कई रूप अंकित हुए हैं। प्रसादजी ने वर्ण, गठन और स्निग्धता-इन तीन दृष्टियों से कपोलों का भावविभोर वर्णन किया है। उन्होंने आरक्त कपोलों की लज्जा, मादकता अतृप्ति की चपल पिपासा और काम की प्रवंचना की क्रीड़ा से युक्त माना है। (स्कन्दगुप्त-३०) उन्हें आँखों के नीचे और कपोलों के ऊपर का 'श्याम मण्डल' (कामना-७२) तक प्रिय है। कवि ने अनेक स्थलों पर चुम्बन अंकित पीले कपोल' (आँसू-३२) और अरुण कपोलों की मतवाली सुन्दर छाया' (लहर ११) की परिकल्पना की है। प्रसादजी ने यथाप्रसंग 'अरुण राग रंजित हिमखण्ड से गोल, उज्ज्वल कपोल' (झरना-२२) सरस कपोलों की लाली, (कामायनी-१०१) आदि की रूप रचना की है। उन्होंने देवकामिनियों के उन सुस्निग्ध सुचिक्कण कल कपोलों की आयोजना की है जिन पर 'कल्पवृक्ष का पीत पराग' (कामायनी-१०) भी नहीं ठहर पाता। कवि ने कोमल कपोल पालि' और उस पर अंकित' सीधी सादी स्मिति रेखा' (आँसू-२२) तक को लक्ष्य किया है। कपोलों का यही रूपांकन उन्होंने अपनी एक जीवत पात्री घटी के माध्यम से भी किया है। उनके शब्दों में घटी के कपोलों में हँसते-हँसते गड्डे पड़ जाते हैं। (कंकाल-२४) लेखक ने 'कपोलों के तिल तक को सूक्ष्मतापूर्वक उभारा है। स्पष्ट है कि कपोल श्री का रूपांकन उन्होंने तल्लीनता के साथ किया है।

मुखवलोकन करते हुए प्रसाद का कवि हृदय नेत्र-सौन्दर्य के प्रति अभिभूत दिखाई देता है। उन्होंने नेत्रों के वर्णन क्रम में पुतली, पलक, बरोनी, अपांग, भ्रू-भंजन -इन सबको स्थापित किया है। प्रसादजी ने नारी के नेत्रों को 'त्रिगुणात्मक सन्निपात' (लहर-६१) की संज्ञा दी है क्योंकि ये सबको अमत्त एवं अधीर कर देते हैं। उन्होंने परम्परागत रूपों में आकर, वर्ण सौन्दर्य आदि दृष्टियों से नेत्रों को मीन चकोर, मृग, कुंज, झील, नलिन, नीलम, कादम्बिनी मेघ आदि से उपमित किया है उदाहरणार्थ —

नील नलिनों की सृष्टि ।' X 'नयनों के नीलम की घाटी' (कामायनी-१२)

×'स्मृति जलधि में नीलम की नाव'×'मानिक मदिरा से भरदो किसने नीलम की प्याली ।' (आंसू-२१)

×'दो पद्म पलाश चषक से दृग' (कामायनी-१६८)

×'मद भरे मलिन नयन' (लहर-२०) आदि ।

प्रसादजी को यौवन के मद से विभूषित रतनारी आंखों के अरुण अपांग, 'पद्म पलाश चषक से दृग' (कामायनी-१६८) आंखों के लाल डोरे, मादकता भरी ललाई 'यौवन के मद की लाली (आंसू-२१), अर्थात् वारुणी विलसित मदिरारुण लोचन (आंधी-६१) बहुत ही प्रिय हैं ।

भाव भंगिमा की दृष्टि से प्रसादजी ने आलस मद नत पलकों' (लहर-४८) और 'लाजभरी चितवन' (लहर-२०) इन दोनों को उभारा है । उन्होंने कटाक्ष को बड़ा प्रश्रय दिया है और 'सुन्दरियों के कुटिल कटाक्ष' (चन्द्रगुप्त-१६४) आंखों में व्याप्त प्रतिपदर्शन का कौशल' (कामायनी-१८४) 'मदोद्धत कटाक्ष की अरुणिमा', 'मीन दृगों के चपल संकेत' (लहर-७६) 'करुणा कटाक्ष की कोर' (आंसू-२६) 'फुलेल पूर्ण आंखों' मीन मद भरी चपल चपल चितवान (झरना-२२) 'अपांग की धारा (झरना-३) 'चितवन में कुसुम दुग्ध सी मधु धारा' (कामायनी-६४) अर्थात् उनींदी, स्वप्निल', अर्धनिमीलित, नशीली, लजीली, चकित, थकित, अलसित आंखों के समस्त नेत्र-सौंदर्य को प्रदर्शित किया है । स्पष्टतः यह नेत्र सौंदर्य उनके रूपबोध का उत्स है, अस्तु परम स्तुत्य भी ।

चक्षु-सौंदर्य के साथ-साथ भ्रू-विलास का उल्लेख भी प्रसाद-साहित्य में बहुशः प्राप्य है । भ्रू-सौंदर्य को उन्होंने कई कोणों से देखा है । उन्होंने 'बलवती लहर सी घनी मिली भौंहों' (इन्द्रजाल-१११) 'सहज सिधी' (तितली-८६) 'महरूपहरा देती हुई' (कंकाल-३२) 'घनी काली', (कंकाल-२४) 'चपल चली भौंहों' (स्कन्दगुप्त-२३) अर्थात् 'वंकिम भ्रू युगल' (झरना-२२) को वरीयता दी है ।प्रसादजी ने भ्रुकुटि का भावपूर्ण विस्तार निरूपित किया है जैसे-'भ्रू लता थी कान तक चढ़ती रही बेरोक' । (कामायनी-९४) कवि ने 'कान सरासन सी बनी भौंहों' (चित्राधार-११२) की भी

उत्प्रेक्षा की है। उन्होंने यत्रतत्र 'भौंहें बंक' और 'चतुर चितेरी सी तूलिका बरौनी' (आँसू-२२) की कलात्मक कुटिलता को रूपायित किया है। प्रसादजी ने पलकों-बरौनियों को लक्ष्यकर 'मदिर पलकों' (लहर-६०) 'अलसाई बरौनियाँ', 'छुरी सी बरौनियों और 'चिकनी सी बरौनियों' की कल्पना की है। वस्तुत उन्होंने प्रलम्ब, रोमिल, और वंकिम भ्रू-युगल का उत्कृष्ट रूपांकन किया है।

मुख-मण्डल के अन्य अवयवों में कर्णमूल और ललाट का भी यथोचित उल्लेख किया गया है। प्रसादजी ने मुखकमल के निकट 'पुरइन के किसलय दल (आँसू-२३) सदृश सुकोमल आरक्त और विस्तीर्ण कर्णयुगल की संरचना की है। उन्हें सलज्ज सुन्दरी कानों (कर्णमूलों) की लाली विशेष प्रिय है। (कामायनी-१०३)

प्रसाद-साहित्य में ललाट के कई रूप अंकित हुए हैं। कवि ने उन्नत ललाट और उसकी स्पष्टता को भरसक उभारा है, जैसे-'वह विश्वमुकुट से उज्ज्वलतम शशिखण्ड सदृश था स्पष्ट भाल, (कामायनी-१६८) स्पष्ट है कि प्रसादजी ने मुखश्री और उसके विभिन्न अवयवों पर अपना सर्वाधिक अवधान केन्द्रित किया है।

२. कंठ, ग्रीवा, स्कन्ध—

अधोमुख अंगों में प्रसाद की दृष्टि ग्रीवा, कंठ तथा स्कन्धों पर काफी टिकी है। वे परम्परायुक्त उपमानों के भी प्रयोक्ता हैं और कुछ नई उद्भावनाओं के भी। परम्परा-युक्त दृष्टि से उन्होंने 'शरद घन बीच धवलस्मित कौमुदी रंजित चपला सी ग्रीवा' (झरना-२२) तथा 'रूप जलधि की उठरही लहरियों के मुक्तागण से लिपटे कोमल कम्बु' (झरना-२२) आदि प्रयोग किए हैं। उन्हें धवल वर्णी तिर्यक् ग्रीवा, पतली लम्बी गरदन आदि रूप प्रिय हैं।

बाहु-भुजदण्ड के प्रति प्रसाद का कवि रूपासक्त दिखता है। भुजमूलों का निरावृत्त मृदु, मांसल, गौर एवं प्रलम्ब रूप उन्हें अभीष्ट है। कवि को इन भुजाओं से आमन्त्रण मिलता अनुभव होता है, यथा—

'..खुले मसृण भुजमूलों से आमन्त्रण सा मिलता ..। (कामायनी-१२५)

इसी उद्देश्य से कवि ने 'बाहुलता', 'भुजलता' आदि की कई आवृत्तियां की हैं।

प्रसादजी को पुरुषो के 'दृढ मांस पेशियो से युक्त इस अवयव' (कामायनी-३) अर्थात् मांसल भुजदण्डों के प्रति भी मोह है; हां नारी की मृणाल बाँहें अधिक प्रिय हैं। कवि ने बाहु को 'तन छवि सर की लहरी', 'मदन के धनु की दुहरी शिथिल शिंजिनी (कामायनी-१४२) कहा है। एक स्थल पर उसने 'गजदन्त सी गौर भुजलता' की भी कल्पना की है।

३ वक्ष:—मानव शरीर के अन्यान्य अंगों मे प्रसाद ने वक्ष-सौंदर्य को विशेषत: रूपांकित किया है। उन्होंने इसे यौवन-सौंदर्य के सन्दर्भ मे तो अंकित किया ही है, साथ ही इन्हे मातृत्व की पुण्य परम्परा से भी जोड़ दिया है' उदाहरणार्थ गर्भिणी श्रद्धा का वर्णन द्रष्टव्य है।' ज्ञातव्य है कि कवि ने इस रूप के प्रति किंचित् विरति भी वर्णित की है।प्रसादजी को उन्नत उरोज सर्वाधिक प्रिय हैं —

'उन्नत वक्षों मे आलिंगन सुख लहरों सा तिरता....।' (कामायनी-१२५)

वक्षस्थल की वर्णश्री की दृष्टि से उन्होंने स्वर्णप्रभ कमलों की कल्पना की है, साथ ही श्वासान्दोलित, कंचुकाबद्ध और स्पन्दित वक्षों की भी, जैसे —

'... सोने की सिकता में मानों कालिन्दी बहती भर उसांस...।' (कामायनी-१४२)

अपने सहज संस्कारोंवश कवि ने "नखदान" (स्कन्दगुप्त-२३) तक की आयोजना की है। -

४ अधोभाग:-देह यष्टि के मध्य निम्न भाग में कटि, नितम्ब, उदर, जघन, जानु, चरण करतल आदि उपांगो की ओर भी प्रसाद की दृष्टि गई है। कुछ उद्धरण प्रस्तुत्य हैं —

'त्रिवली थी त्रिविध तरंगमयी.. .।' (कामायनी-१६८)

× पल्लव सदृश हृथेली...।' (कामायनी-१२६)

इसके अतिरिक्त कवि ने यथासन्दर्भ गुल्म, नख, चपलकर, किसलय कोमल उंगलियाँ तथा गोरी पतली उंगलियो का भी चित्रण किया है।

स्पष्ट है कि मानवकलेवर के विभिन्न रूपों का चित्रण प्रसाद-साहित्य में प्राप्य हैं। इन वर्णनों द्वारा उन्होंने अपना एक आभिजात्यपूर्ण, सुरुचिसम्पन्न, परम्परापोषित

साथ ही अभिनव सौंदर्य प्रतिमान स्थापित किया है। आंगिक गठन में उन्हें सूक्ष्मता, स्थूलता अर्थात् आरोहावरोह प्रिय है। स्थूलता के कारण इन चित्रों में कुछ मांसलता आ गई है और सूक्ष्मता से रहस्यमता। फिर भी प्रसादजी का रूपांकन कदाचित ऐंद्रिय नहीं है। उन्हें तनिमा स्निग्धता सुकुमारता आदि से मोह है। वे रमणीयता के प्रति विलुब्ध हैं। उनका कवि आधुनिका की अपेक्षा ग्राम्या की ओर अधिक उन्मुख है। नश्चय ही उनका काव्य रूपसकुल है। यह रूपश्री मुख्यत मर्यादा के व्याज से व्यक्त हुई है।

प्रसाद का तारुण्यबोध

प्रसाद तारुण्य के कवि हैं। उनका यह तारुण्यबोध उनके प्रेम-सौंन्दर्य का हेतु है। उन्होंने एक रूपक के सहारे यौवन को जीवन कानन का मधुमय बसंत कहा है—'अकस्मात् जीवन कानन मे एक राका रजनी की छाया में छिपकर मधुर बसंत घुस आता है। शरीर की क्यारियाँ हरी भरी हो उठती हैं। सौंदय का कोकिल 'कौन' कहकर सबको रोकने टोकने लगता है पुकारने लगता है फिर उसी में प्रेम का मुकुल लग जाता है। आँसू भरी स्मृतियाँ मकरन्द सी उसी में छिपी रहती है।' (चन्द्रगुप्त-२०५) इसी उक्ति को प्रकारान्तर से बार बार दुहराया गया है—

मधुमय बसंत जीवन वन के वह अन्तरिक्ष की लहरों में
कब आए थे तुम चुपके से रजनी के पिछले पहरों में।'

× 'आनंद सुमन सा विकसा हो। वासती के वन वैभव में जिसका पंचम स्वर पिक सा हो।' (कामायनी-६३)

× 'आज इस यौवन के माधवी कुंज मे कोल रहा।' (चन्द्रगुप्त-१५५)

× 'आज मधु पीले यौवन वसंत खिला।' (विशाख-२६)

× 'वस सदृश यौवन खिला है फूल की बहार।' (कामना-४१)

× 'वेला के हृदय मे वसत का विकास उसन में मलयानिल की गति, कंठ में वनस्थली की कोकिल आँखों में कुसुमोत्सव।' (इन्द्रजाल-७) आदि।

यहाँ सर्वत्र यौवन वसंत की अनुगूँज है। निश्चय ही यह प्रसाद का एक रूढ़ बिम्ब है। स्पष्टत वे जीवन यौवन की वासन्तिक शोभा के उन्नायक हैं।

प्रसादजी ने यौवन सौंदर्य के प्रति गहरी लालसा व्यक्त की है। उन्होंने इसे 'आलोक का महोत्सव' कहा है—'सबके जीवन में एक-बार प्रेम की दीपावली जलती है... जिसमें हृदय हृदय को पहचानने का प्रयत्न करता है, उदार बनता है और सर्वस्व दान करने का उत्साह रखता है...। (ध्रुवस्वामिनी–५३) प्रसाद की नियतिवादी विचारधारा अवसाद-विषाद और नैराश्य की प्रतिक्रियावश प्रारम्भिक कृतियों में एक मांसल चेतना उभर आई थी, जिसके कारण उनका अन्तर्मन क्षण-स्थिर यौवन सौंदर्य के प्रति लालायित हो उठा। उनके अनुसार यह 'स्वरापूर्ण यौवन ही हाड़ मांस के वास्तविक जीवन का सत्य' है। (कंकाल–२) लेखक के शब्दों में–'संसार नित्य यौवन और जरा के चक्र में घूमता है, किन्तु मानव-जीवन में तो एक ही बार यौवनोन्माद का प्रवेश होता है, उसमें अनुभव का प्रत्याख्यान और स्नेह का आलिंगन भरा रहता है।' (इरावती–१६) यौवन की इस अस्थिरता ने प्रसाद को यौवन परायण बना दिया है। वे मदोन्मत्त हो उठे हैं —

'जीवन कहता यौवन से कुछ देखा तूने मतवाले।
यौवन कहता सांस लिए चल कुछ अपना सम्बल पाले॥' (कामायनी)

यही कारण है कि उनके अनेक युवा पात्र यौवन-विह्वल दिखाई देते हैं। 'कंकाल' के विजय का चरित्रांकन करता हुआस्वय लेखक ही कहता है—'विजय के वे दिन थे, जिसे लोग जीवन का वसंत कहते हैं....जिसे यौवना कहते हैं। शीतकाल के छोटे दिनों में घनी अमराई पर बिछलती हुई हरियाली से तर धूप के समान स्निग्ध यौवन..। (कंकाल–७७) लेखक ने इस यौवन को अल्हड़', प्रवेगपूर्ण और सर्वथा स्वच्छंद घोषित किया है। सुन्दरी सालवती का परिचय देता हुआ वह कहता है–'उसका रूप और यौवन मानसिक स्वतन्त्रता के साथ सदानीरा की धारा की तरह वेगपूर्ण था........।' (इन्द्रजाल–१२७)

प्रसाद ने यौवन की इस उद्दाम अभिलाषा को मनोयोगपूर्वक उभारा है। इस यौवन को उन्होंने 'स्वर्गीय दिवस' (आकाश दीप–४०) कहा है, साथ ही इसे क्रीड़ा विह्वल यौवन, मादक उद्दाम यौवन, अधीर पागल अभिलाषा कायौवन, रक्तिम यौवन

(लहर-२१) आदि विशेषण दिए हैं। लेखक ने यौवन की मदोन्मत्तता प्रदर्शित करने के लिए यौवन मद, 'अनन्त यौवन मधु। (आँसू-६८) 'यौवन मदिरा' आदि पद प्रयुक्त किए हैं जैसे—

'प्रथम यौवन मदिरा से मत्त प्रेम करने की थी परवाह।' (चन्द्रगुप्त-१२३) वस्तुतः प्रसाद यौवन-लावण्य से अभिभूत हैं। उनका साहित्य 'उषा ज्योत्स्ना सा यौवन स्मित' है, उनके पात्र 'जीवन में यौवन लाने को जी-जीकर मरते' (कामायनी-१२१) दिखाई देते हैं, उनकी श्रद्धा नित्य यौवन छवि से दीप्त (कामायनी-४७) होने के कारण ही जड़ में स्फूर्ति प्रकट कर देती है। तात्पर्य यह कि उनके काव्य में यह 'यौवन मधुवन की कालिन्दी (कामायनी-११६) सतत प्रवहमान रही है, प्रसाद का कवि आद्यन्त 'यौवन के माधवी कुंज' (लहर-५६) से घिरा रहा है और उनकी आँखों में' यौवन की ज्योति भरी अस्पष्ट लिपि' (कामायनी-६४) अनवरत समाई रही है। उनके अनुसार यह यौवन उल्लास, उन्माद, और प्रेम का प्रपूरक है, साथ ही सौंदर्य की पराकाष्ठा भी—

'माना कि रूप सीमा है सुन्दर तव चिर यौवन में। (आँसू-२०)
प्रसाद ने इसे ही प्रेम-सौंदर्य का अधिकरण माना है। उनके शब्दों में—
'जब यौवन में उल्लास, कुसुम में मकरन्द, चाँदनी में मेघ की छाया और मदिरा में उन्माद रहता है तब हृदय अपने सुन्दर साथी की खोज करता है।' (इन्द्रजाल-४०)

निःसन्देह प्रसाद का साहित्य यौवन-सौंदर्य से आप्लावित है। उनका प्रत्येक युवा प्रेमी पात्र सुन्दर है। यह भी उल्लेखनीय है कि उन्होंने विवेक को यौवन का बाधक तत्त्व माना है। लेखक के मतानुसार— समझदारी आने पर यौवन चला जाता है। (चन्द्रगुप्त-८४) स्पष्ट है कि प्रसाद ने बुद्धि-विवेक और उससे उत्पन्न दुःखवाद का प्रत्याख्यान करने के लिए ही यौवनोन्माद को प्रश्रय दिया है। इसे ही कालान्तर में उन्होंने कामाध्यात्म और आनन्दवाद रूप में परिणत कर दिया है। उनके अनुसार यौवन आनन्द की स्थिति है। इसके अभाव में दुःख ही दुःख व्याप्त रहता है। काम का अभिप्राय इसी भाव का द्योतक है—

'लालसा भरे यौवन के दिन पतझड़ से सूखे बीत जाएँ....। (कामायनी–१६४) यह यौवन तन का भी होता है और मन का भी। तन का यौवन सौंदर्य प्रेम का वाहक होता है और मन का यौवन मस्ती का, आनन्द का। प्रसाद के पूर्ववर्ती साहित्य में तन का यौवन अधिक है और उत्तरवर्ती साहित्य मे मन का यौवन, किंतु इतना सिद्ध है कि यह यौवन उनके सारे साहित्य में छाया हुआ है तथा कवि इसके उदात्तीकरण के लिए निरन्तर सचेष्ट है। यद्यपि लेखक ने यौवन को यत्र–तत्र प्रेम के बजाय विलास-भोग का पर्याय माना है, उदाहरणार्थ 'चिरकिशोर वय नित्य विलासी' देववर्ग, विलास के उपकरणों के साथ अपना 'भरा हुआ यौवन' अर्पित करने वाली विजया (स्कन्दगुप्त) 'यौवन स्वास्थ्य और सौंदर्य की छलकती हुई प्याली' सुरमा (राज्यश्री) आदि का नामोल्लेख किया जा सकता है, फिर भी प्रसाद का यौवन-सौंदर्य मात्र वासना विधायक ही न होकर प्राय प्रेमोत्तेजक है।

प्रसादजी ने यौवन–सौंदर्य का सम्यकतापूर्वक प्रत्यक्षन किया है। कालिन्दी के मादक रूप का वर्णन करते हुए वे कहते हैं–'उसके अंग–प्रत्यंग से लावण्य की ज्योति, यौवन का स्फुलिंग छूट रहा था....। आँखों मे मादकता के डोरे...। (इरावती–५२) ये वस्तुत: यौवन–सौंदर्य के सहज लक्षण हैं। प्रसादजी ने तारुण्यजनित रूप, रंग अंग भंगिमा, गति, गठन और कायिक चेष्टाओं का विस्तृत विवरण दिया है, जैसे—

'उसकी भौंहों मे एक बल, आँखों के डोरे में खिंचाव है, वक्षस्थल पर तनाव है और अलकों में 'निराली उलझन है चाल में लचीली लटक है....। (कामना–३६) 'रूप की छाया' कहानी की उन्मादिनी सरला का यौवन–विभ्रम अंकित करते हुए वे कहते हैं—'यौवन की उत्कंठा उसके बदन पर निखर रही थी। प्रत्येक अंग में अंगड़ाई, स्वर में मरोर, शब्दों में वेदना का सचार था.. । (आकाशदीप–१६०) कुछ ऐसा ही रूप 'कंकाल' की अल्हड़ युवती घटी, 'तितली' की मनवरी आदि का भी है।

यह भी उल्लेखनीय है कि प्रसाद ने परिपक्व यौवन की अपेक्षा कैशोर 'कुमार यौवन' अर्थात् वय: सन्धि-वेला को अधिक प्रश्रय दिया है। उन्हें प्राय: अर्धोद्घाटित रूप

और अनाघ्रातित यौवन मधु ही प्रिय है। वस्तुतः कामाकुल प्रमत्त यौवन में विलास की जो उष्ण सोंधी गन्ध रहती है उससे यह नवागत यौवन मुक्त रहता है। युवा सुन्दरी सुवासिनी के प्रति नन्द का यह कथन इसी मत की पुष्टि करता है—'तुम्हारे यौवन का विभ्रम अभी संकोच की अर्गला से जकड़ा हुआ है। तुम्हारी आँखों में काम के सुकुमार संकेत नहीं, अनुराग की लाली नहीं ।' (चन्द्रगुप्त-६२) निश्चय ही प्रसाद को यह नतमस्तक यौवन धन और उसका यह 'लाज भरा मौन-सौंदय' (चन्द्रगुप्त-६३) (सलज्ज यौवन) विशेष प्रिय है।

प्रसादजी ने कुछ पात्रों के माध्यम से ढलते हुए यौवन तथा अभुक्त यौवन के प्रति कुंठा भी व्यक्त की है। पति परित्यक्ता कोमा 'यौवन तेरी चंचल छाया' गीत गाती हुई वसंत के अछूते उदास पवन और प्रेम की ऋतु का उल्लेखकर यही अनुशोचना प्रकट करती है। (ध्रुवस्वामिनी-३१) उनकी राजकुमारी (तितली) भी ढलते हुए यौवन से चिंतित और उसे रोक रखने की चेष्टा में व्यस्त है। यही स्थिति चोरा के समान उमड़ते किन्तु अभुक्त यौवन वाली 'ममता' की है। (आकाशदीप-२५) प्रसाद को यौवन के ढलन में एक तीव्र प्रवाह दिखता है— जैसे चाँदनी रात में पहाड़ से झरना गिर रहा हो । (आकाशदीप-४६) ये विविध रूपच्छवियाँ प्रसाद के तारुण्यबोध की साक्षी हैं।

निष्कर्षतः यह स्वीकार्य है कि प्रसाद यौवन, उससे उत्पन्न सौंदर्य, प्रेम आनन्द के कवि हैं। उनके प्रारम्भिक कृतियों में यह यौवन सौंदर्य काफी चटकीला है, कालान्तर में वह कुछ रूपान्तरित हो गया है और प्रकृति-प्रतीकों के माध्यम से प्रकट हुआ है। 'कामायनी' में कवि ने मानवीकरण के सहारे 'यौवन की मतवाली रात्रि का वर्णन करके अपनी इसी मनोवृत्ति का परिचय दिया है। प्रकृति का यह यौवन-सौंदय वस्तुतः नर-नारी के यौवन काल और उनके अंग-सौष्ठव की ही एक उदात्त परिणति है। निश्चय ही प्रसाद की यौवनानुभूति बड़ी सुदूरगामी है।

प्रसाद का सौंदर्य—प्रसाधन

प्रसादजी ने मानव देह को सौन्दर्य स्वस्थ और यौवन बनाने का यत्न किया है।

उनकी रूपोपासना का यह एक सहज धर्म है। उन्होंने अपने रूपाश्रय का इतना अधिक मण्डन किया है कि वह शोभा के भार से आक्रांत हो उठा है। प्रसाद-साहित्य में नर-नारी-देह के विभिन्न प्रसाधनों का बाहुल्य दिखाई देता है, जिन्हें कई श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।

१ केश-प्रसाधन — केशों की साज-सज्जा हेतु प्रसादजी ने अनेकानेक पुष्पों, रत्नों और आभरणों का उपयोग किया है। कवि ने 'आँसू' की नायिका की अलकों को हीरकों एवं मौक्तिक लड़ियों से सम्गुम्फित किया है (आँसू-२१) और दूसरी ओर मानवीकरण द्वारा प्रकृतिसुन्दरी की अलकों को तारों से गुँथो' (कामायनी-२८५) अंकित किया है। अन्यत्र भी उन्होंने जूड़े में लगी चमेली की माला' (इरावती-५२, ८०) करौंदे में फूलों की माला', 'स्वर्णमल्लिका की माला' एवं 'कुरबक की कलियों का उल्लेखकर केशों के पुष्पाभरणों के प्रति पर्याप्त रुचि प्रदर्शित की है। प्रसादजी ने केशरादि को प्राय सुवासित किया है, जैसे —

'अगरु धूम की श्यामा लहरियाँ उलझी हो इन अलकों से ..।'(स्कन्दगुप्त-१४३)

×'आशा की उलझी अलकों से उठी लहर मधुगन्ध अधीर (कामायनी-३६) आदि। इसीप्रकार 'अलका म मलयज बद' (लहर-१६) करने की कल्पना भी बड़ी गूढार्थी है। ये उक्तियाँ कवि की केश-गन्ध-प्रियता की साक्षी हैं।

केश-प्रसाधन के अन्तर्गत मुक्त कुन्तलों के साथ-साथ वेणीबन्धन भी प्रसाद को प्रिय है। उन्होंने वेणी के कई रूप इंगित किए हैं और वेणी, जूड़ा, कबरी आदि के कई प्रयोग किए हैं। उदाहरणार्थ —'पुष्पमर्दिता वेणी' (महाराणा का महत्व-१३) 'घुँघराली वेणी', 'पुष्पबन्ध जूड़ा' (कंकाल-३७) 'कबरी भार' (झरना-२१, ४५) 'खुली कबरी' (कामायनी-२१२) आदि उल्लेख द्रष्टव्य हैं।

मुक्त केश-रचना भी प्रसादजी को बड़ी प्रिय है। उन्होंने घुँघराली, लहरीली, लोल-तरल, आकुंचित या वेल्लित या अजकावली को मनोयोगपूर्वक रूपायित किया है। इसी उद्देश्य से उन्होंने 'कुटिल कुन्तल' (कामायनी-६३) बिखरी अलकें, (आँसू-२५) 'घुँघरालीअलकें' (कामायनी-२२०) 'उलझनवाली अलकें' (कामायनी-२८६)

'लहरीली नीली अलकावली (लहर-५६) मुक्तकुन्तला (आँसू-१०) अनिमलकों की उलझन' (आँसू-१२) गुल्फ विलम्बित केश कलाप (छाया-१०२) कुटिल घने कुन्तल' (झरना-२२) आदि।

रूपच्छवियों की अवतारणा की है। प्रसादजी को कुंचित केश विन्यास प्रिय हैं। यही कारण है कि उन्होंने श्रद्धा के अस अवलम्बित मुख के पास घिर रहे घुँघराले बालों के प्रति बड़ी तन्मयता प्रदर्शित की है। अन्य स्थलों पर भी प्रसाद ने कंधे तक बिखरे बालों, आँखों पर बरजोरी परदा डालने वाली घुँघराली अलकों' (छाया-२१२) 'उलझी अलकों (कामायनी-१६८) आदि रूपों को विधिवत् चित्रित किया है।

केश-प्रसाधन करते हुए प्रसादजी ने उनके गुणों जैसे-सघनता, विस्तार, सुकोमलता, सुचिक्कणता, श्यामलता आदि को प्रश्रय दिया है। कवि ने प्रलम्ब श्यामल केशों के प्रति विशेषानुराग व्यक्त किया है और प्राय गुरमबुली केशों की अवतारणा की है, जैसे —

"अलकें लेती थी गुल्म चूम" (कामायनी-१४२)

इसीप्रकार—'सन्ध्या की घन अलकें (आँसू-४७) सुन्दर उलझन वाली अलकें' (कामायनी-२८६) 'अलकों के अधकार' (लहर-१०) आदि उक्तियाँ अवधारणीय हैं।

पुरुषों के केश-कलाप, विशेषत शिशुओं के कुंचित बालों का वर्णन भी प्रसादजी ने सुरुचिपूर्वक किया है, जैसे —

'अरुण शिशु के मुख पर सविलास सुनहली लट घुँघराली कांति।' (झरना २८)

× मृदु मलयज सा लहराता अपने मसृण बाल।' (कामायनी-१५२)

×'जुटरी खुली अलक।' (कामायनी-१३६) ×'कुंचित केशों में कुरबक की कलियाँ' (प्रतिध्वनि-२५) आदि।

स्पष्ट है कि प्रसाद ने केश राशि का सवत्र सुरुचि पूर्ण प्रसाधन किया है। उनका केश बिम्ब बड़ा वैविध्यपूर्ण है। केशरचना की उन्होंने कई प्रणालियाँ प्रयुक्त की हैं जो निश्चय ही सराहनीय हैं।

२ अगराग —आंगिक मण्डन के लिए प्रसादजी ने कई उपकरणों और प्रक्रियाका

का विश्लेषण किया है। उन्होंने शरीर को सुवासित करने के लिए अंगराग-आलेपन की विशेष व्यवस्था की है। प्रसादजी को चंदन, अगरु, कर्पूर आदि शीतल-सुगन्धित द्रव्यों का अभ्यंग मर्दन अत्यंत प्रिय है। यद्यपि एक स्थल, पर उन्होंने 'मलिनता और कलुषता की ढेरी पर बाहरी कुसुम-केशर के लेप' (ध्रुवस्वामिनी-६०) का प्रत्याख्यान किया है, फिर भी उनकी सुन्दरियाँ अंगराग-अवलेपन के प्रति बहुत अनुरक्त हैं, जैसे 'अजातशत्रु' की श्यामा 'फूलों की धूल से अंगराग' रचाने हेतु कृतसंकल्प है। लेखक ने 'देवदासी' कहानी में भी यथास्थल अंगराग-लेपन का उल्लेख किया है। उन्होंने अन्यत्र प्राकृतिक अंगराग का रूपकात्मक वर्णन भी किया है, जैसे—'नव सन्ध्या का श्याम अंग पर तपन रश्मियों का पीला अंगराग.. ।' (अजातशत्रु-८५) कामायनी में प्रसादजी ने इस प्रसाधन कला का विकासक्रम भी निरूपित किया है —

'गंध चूर्ण था लोध्र-कुसुम रज, जुटे नवीन प्रसाधन ये . ।' (जनमेजय का नागयज्ञ-४६) कवि के अनुसार यह प्रसाधन नागर संस्कृति और औद्योगिक युग की विशिष्ट देन है।

३. अलक्तक:—चरणतल की सज्जा हेतु प्रसादजी ने महावर या अलक्तक का विशद वर्णन किया है, यहाँ तक कि उन्होंने पदलालिमा के समक्ष अंतरिक्ष की अरुणिमा की अवमानना कर डाली है, यथा—

'नूपुरों की झनकार घुली मिली जाती थी
चरण अलक्तक की लाली से ।" (लहर-६०)

अन्यत्र भी कवि ने आरक्त चरणों की कामना की है—

'उसके सूखे अधर माँगते तेरे चरणों की लाली को. ।' (लहर-४२)

इसी प्रकार कालिन्दी के सौंदर्य शृंगार-वर्णन-प्रसंग में उन्होंने 'अलक्तक और नूपुर' को राग एवं संगीत विशेरते चित्रित किया है। ये उल्लेख कवि की अलक्तक-प्रियता के प्रमाण हैं।

४ अंजन:—चक्षु-सौंदर्य हेतु अंजन-रंजन और भ्रू-रचना को भी प्रसादजी ने महत्त्व दिया है। उन्होंने कहीं तो अंजन रेखा को 'कलापानी बेला' (आँसू-२२) का उत्प्रेक्षा दी है और कहीं सुरमीली आँखों की रूपरचना की है। निश्चय ही प्रसादजी को कजरारी

चाँखें दिए हैं। नेत्र-विलास, दृष्टि-श्राकुंचन और कटाक्ष का वर्णन करते हुए उन्होंने कज्जल का अनेकत्र उल्लेख किया है।

उपर्युक्त मण्डनों के अतिरिक्त 'अरुणराग रंजित कपोलों की रचना' (झरना-२२) और अन्य कायिक प्रसाधनों की ओर भी प्रसादजी ने यत्किंचित् संकेत किए हैं जो इस तथ्य के साक्षी हैं कि प्रसादजी ने रूपश्री का सम्यक् शृंगार करके उसे 'अनुरक्त शोभि' बनाने का यत्न किया है, जो जीवन के सुख-सौभाग्य और सांस्कृतिक पुण्यपरम्परा की दृष्टि से प्रशंसनीय है।

विभिन्न आभूषण —

प्रसाधन के अन्तर्गत प्रसादजी ने यथार्थ अलंकरणों (आभूषणों) का विस्तृत विधान किया है। उन्हें रणन-क्वणन जैसी ध्वनियों से युक्त धात्वाभरण, जैसे—नूपुर, किंकिणी, कंकण आदि विशेष प्रिय हैं। इनके अतिरिक्त रत्नाभरणों का भी उन्होंने बहुश उपयोग किया है।

उपर्युक्त आभूषणों में 'नूपुर' सर्वप्रिय हैं। कवि उनकी क्वलत ध्वनि, मधुगुंज अथवा उनके नाद-सौंदर्य पर विशेष मुग्ध हैं कंकण एवं नूपुर की झंकार को उन्होंने शृंगार और सौंदर्य सम्भार का मूल घोषित किया है। यही कारण है कि प्रसादजी ने 'कूणित कंकण रणित नूपुर' (कामायनी १०) सोने के चमकते कंकण' (कामना-९६) वैदूर्य कंकण' (इरावती-८०) खनकती चूड़ियाँ', (कंकाल-२०१) 'नूपुर की झनकार' (लहर-६०) मधुर नूपुरों की बोल गयी झनकार, (लहर-७६) मीठी मीडों में नूपुर की झनकार' (झरना-३२) आदि का सुरुचिसम्पन्न स्थापन किया है। प्रसाद-साहित्य में कटि-किंकिणी का शृंगार भी बहुपलब्ध है। उदाहरणार्थ— 'मणिमेखला', 'कदम्ब की रसना', 'मेखला की सतलड़ी' आदि प्रसाधन द्रष्टव्य हैं।

कंठ एवं वक्ष को सुसज्जित करने के प्रसाधन से प्रसादजी के कम्बु कंठ पर हिलते मरकत हार' (कामायनी-११) मोतियों की एकावली'। (इरावती-५६) 'मणिरचित मनोहर माला' (कामायनी-१३) 'रत्नराजि' (लहर-७७) पुष्पांकित कदम्ब की माला' (कामायनी-६८),'सतलड़ी' (इरावती-१०१) आदि का यथास्थल सन्निवेश किया है।

अन्यान्य आभूषणों में महाकवि ने शीशफूल, किरीट, अंगुलीय, चूड़ामणि कर्णावतंस आदि अनेक रत्नजटित, धातुनिर्मित साथ ही पुष्पालंकृत आहार्यों की आयोजना की है, उदाहरणार्थ—

'मणि वाले फणियों का मुख क्या भरा हुआ हीरों से (आँसू) उक्ति में सीमंत रेखा के मध्य पिरोई गई मुक्तावली का संकेतकर और अन्यत्र भी 'मणिबंध', 'किरीट' आदि का उल्लेखकर इसी तथ्य को प्रोद्भासित किया है। प्रसादजी को रत्नाभरण भी बहुत प्रिय हैं। उन्होंने कई रत्नों जैसे—'इन्द्रनील मणि' (कामायनी–२४) 'नीलम पद्मराग', (आँसू–२१) वज्रमणि, वैदूर्य (इरावती–८०, ९०) मरकत, हीरक, मणिबंध, मुक्ता-सीपी विद्रुम आदि का उल्लेख किया है साथ ही मणि जड़े कंचुक पट्ट, (इरावती–८०) स्वर्णपट्ट (कामना–६) आदि का भी। पुष्पाभरणों का प्रयोग भी प्रसादजी ने उदारता-पूर्वक किया है। उनकी सुन्दरियाँ प्रायः 'कुसुमाभरण भूषिता' (आकाशदीप–८६) दिखाई देती हैं। प्रसादजी ने अनेक स्थलों पर सुमन माल कर्णिकार के कर्णफूलों कुसुम स्तवकों (इरावती–८०) स्वर्णमल्लिका की माला' और वन-कुसुमों की अध विकचकली की पुष्पावलियों (कामायनी–१८१) का उल्लेखकर इसी पुष्प-प्रसाधन की पुष्टि की है।

वस्त्र-विन्यास:—प्रसादजी ने नर-नारी के सांस्कृतिक परिधान को बड़ा महत्त्व दिया है। उन्होंने यथा प्रसंग 'जरतारी ओढ़नी' (महाराणा का महत्त्व–१३) धवल चीनांशुक 'महीन उत्तरीय' (इरावती–५२, ८०) 'रंग बिरंगी छींट', (कामायनी–३०) 'छींट की घाँघरा, चोली', (इन्द्रजाल–५) 'साड़ू की छींट', 'तारक खचित नीलपट परिधान' (लहर–६१) 'सुनहली साड़ी', (कामायनी–३८) 'स्वर्णतारों से खचित तारों का लहँगा', (इरावती–७९) 'कौशेय वसन' (कामायनी २९३) 'कोमल काले ऊनों की नव पट्टिका', (कामायनी–१४२) 'किनारीदार धोती' (तितली–८६) 'उन्नत वक्षस्थल पर नीली रेशमी पट्टी' (इरावती–५६) 'कटि में लिपटा हल्का नील वसन' (कामायनी–१४३) 'मेषों के मसृण चर्म' (इन्द्रजाल–४६) 'गैरिक वस्त्र' (कामायनी–२७७) 'काषाय वस्त्र' (कंकाल–१०) 'चारु कार्य खचित कंचुकी' (आकाशदीप–४६) आदि

कितने ही प्राहार्यों की प्रायोजना की है और इस प्रकार काया को श्रीसम्पन्न बनाने का प्रयत्न किया है।

अन्य स्फुट प्रसाधनः

उपर्युक्त वस्त्रालंकारों के अतिरिक्त सौंदर्य-प्रसाधन के उद्देश्य से प्रसादजी ने और अनेक विधान किए हैं जैसे—ताम्बूलराग रस-रंजन, आसव-सेवन आदि। उन्होंने प्राचीन प्रसाधनों का विवेचन करते स्पष्ट घोषित किया है कि 'ताम्बूल रंजित सुन्दर अधर उस काल के भारतीय-सौंदर्य के प्रतिनिधि थे।' (इन्द्रजाल-१२८) इसी दृष्टि से उन्होंने कालिन्दी के अधरों पर सुशोभित ताम्बूल राग को सौंदर्य-सम्मोहक सिद्ध किया है। (इरावती-७६) लेखक के अनुसार 'पान से लाल पतले-पतले ओठ अपनी वक्रता के कारण रूप-रहस्यपूर्ण' (आकाशदीप-१२७) प्रतीत होते हैं। प्रसादजी ने अपनी सांस्कृतिक परम्परा और सुरुचि के प्रभाववश ताम्बूल वाहिनी की अनेकत्र व्यवस्था की है। (चन्द्रगुप्त-१८४) उन्होंने ताम्बूल करण्डक को विधि-विधानपूर्वक प्रस्तुत किया है।

आसव-सेवन भी सौंदर्य की श्रीवृद्धि का एक अभिजात संस्कार है। प्रसादजी ने वारुणी विलसित नेत्रों, (आंधी-६१) पारसीक आसवक, सोम आदि पेय पदार्थों और उनके अनुपात से उत्पन्न 'मदिर सौंदर्य' का बहुधा उल्लेख किया है। इसीप्रकार अवधार्य उपकरणों में शस्त्रास्त्रों (जैसे-मनु का राजदण्ड, कृष्णाराच, त्रिशूल आदि) तथा विभिन्न छद्म वेशों-रूपाकृतियों का उपस्थापन कर प्रसादजी ने अपनी प्रसाधन-कला प्रदर्शित की है।

स्पष्ट है कि सौंदर्य को श्रीसम्पन्न बनाने के लिए उन्होंने कोई कसर उठा नहीं रखी है। वस्तुतः प्रसादजी की यह सौंदर्य-सज्जा अत्यन्त अभिजात, सुरुचिसम्पन्न और अभिनव है। यह भी स्मरणीय है कि उन्होंने कृत्रिम और कामोत्तेजक प्रसाधनों की प्रायः भर्त्सना की है। उनके शब्दों में —

'सरलता हृदय की पवित्रता, स्वच्छता और अपनी प्रसन्नता के लिए उतना ही स्त्री सुलभ शृंगार पर्याप्त है, जो स्वतन्त्रता में बाधा न डालता हो। कुटियों [redacted] सदय बनने के लिए कठपुतली की तरह सजना व्यर्थ ही नहीं, पाप भी है।'

×'स्त्रियाँ विशेष शृंगार का ढोंग करके अपनी स्वाभाविकता-स्वतन्त्रता भी खो बैठती हैं। वस्त्रों और आभूषणों की रक्षा करने और उन्हें सम्हालने में उनको जो काम करने पड़ते हैं, वे ही पुरुषों के लिए विभ्रम हो जाते हैं। चलने में उन्हें आभूषणों के कारण सम्हालकर पैर रखना, कपड़ों को बचाने के लिए समेटकर उठाते-हटाते खींचते हुए चलना-यह सब पुरुषों की दृष्टि को कलुषित करना ही है, हमारे लिए और बन्धन हो जाता है ।' (जनमेजय का नागयज्ञ ६२)

स्पष्ट है कि प्रसादजी 'नूतनता के आनन्द' के अभिलाषी है और परिवर्तन (नए-नए प्रचलन) के विश्वासी भी, पर मात्र कायिक कौतुक युक्त फैशन' ही उन्हें अभीष्ट नहीं है। उन्होंने फैशन लोलुप व्यक्तियों की स्पष्ट भर्त्सना की है—

'पुरुष चाहता है स्त्रियाँ सुन्दर हों, अपने को सजाकर निकलें और हम लोग देखकर उनकी आलोचना करें, वेशभूषा के वह नए नए ढंग निकालता है ।' (तितली-१५६) कवि ने इसी दृष्टि से सुरबालाओं के अतिवादी शृंगार को निंद्य सिद्ध किया है। (कामायनी-९) और दूसरी ओर प्रकृति बाला के असत्य शृंगार (कामायनी-३६) की परिपुष्टि की है।

अस्तु. यह सहज स्वीकार्य है कि प्रसादजी ने स्वयं को सौंदर्य-समाधि में सत्वस्थ करके मानव (विशेषतः नारी) देह को समलकृत किया है। सामाजिक विधिनिषेधों के कारण उनके प्रसाधन प्रायः प्रकृतिपरक हो गए हैं। उन्होंने स्पष्टतः 'विच्छित्तिपूर्ण शृंगार से कला की सृष्टि' (इरावती-८०) घोषित की है। निश्चय ही उनकी यह कला सौंदर्य-सम्वर्द्धन की मूलाधार है और यह सौंदर्य उनकी अन्तश्चेतना की देन है।

● ●

प्रसाद की आनन्द-साधना

प्रसाद का कामाध्यात्म्य एवं आनन्दवाद

प्रसाद साहित्य में प्राक्षितिज रहस्यों की चिन्ता है और विगत मधुमयजीवन की खुमारी भी। क्योंकि प्रसादजी प्रेम रहस्यों के समर्थ स्रष्टा भी हैं और युग-सत्य के सतर्क जीवन द्रष्टा भी। उनके काव्य में एक ओर रहस्य दर्शन युक्त आध्यात्मिक साधना है और दूसरी ओर भौतिक स्पृहा भी। उनके कवि व्यक्तित्व में जहाँ एक कसक उठती दिखाई देती है, वहीं मन विश्रान्ति की लोकोत्तर चेतना भी। वस्तुत प्रसाद का साहित्य बहुरंगी है। वह हर भ्रान्ति से दूर। उसमें न मात्र वासनोद्गार हैं,
५ न परहेजी संस्कार बल्कि प्रेम के परिष्कार का प्रयत्न है। देखा जाए तो हिन्दी साहित्य में प्रथम बार प्रसादजी का प्रेम-सौंदर्य वृन्दावन की गलियों से सन अरहर के खेतों से तथा रंग महलों की सज्जा से बाहर निकलकर व्यापक लोक-जीवन में अवतीर्ण हुआ है। आध्यात्मीकरण द्वारा यही क्रमश काम सामरस्य श्रद्धावाद तथा आनन्दवाद में परिणत होकर कामाध्यात्म्य बन गया है।

वस्तुत प्रसाद का कर्तृत्व द्वयता की सृष्टि करके भी समन्वयात्मक है। उन्होंने मानव प्रकृति प्रेम, यौवन सौन्दर्य-विलास करुणा तथा आनन्द के गीत गाकर मानवीय (भौतिक) भावनाएं चित्रित की हैं और अपने रहस्य-दर्शन द्वारा उसे समन्वित भी कर लिया है। इसे स्पष्ट करने के लिए प्रसाद-साहित्य में प्राप्य प्रेम-सौंदर्य के भौतिक एवं आध्यात्मिक आधार विवेचन करणीय है।

१ भौतिक आधार —प्रसाद का कवि अपनी मस्ती में रूप और यौवन के रसीले राग गाता है जिसमें ऐन्द्रियता की अनुगूंज है प्रमाणस्वरूप "आँसू" के प्रथम संस्करण का पूर्वार्द्ध विचारणीय है। यहाँ कवि अपने बीते हुए दिनों की मधुमय घड़ियों को याद करता हुआ विरह से कराह उठा है। उसके मस्तिष्क में घनीभूत पीड़ा है। कवि के

हृदय में प्रेम-स्मृतियों की एक बस्ती बस गई है। वास्तव में उसके मधुर प्रेम की पीड़ा जो पहले मादक थी, मोहमयी थी, आज हृदय को सुकुमार अनुभूतियों को आहत कर रही है। प्रकृति के उपकरण उसकी विरह व्यथा को उत्तेजित कर रहे हैं। अतएव कवि रो रोकर अपनी करुण कहानी सुनाने को विवश हो गया है।

प्रसादजी स्वीकारोक्ति के अनुसार उनका प्रिय ग्रीष्म की प्रथम अर्धरात्रि में रजनी के पिछले पहरों में या 'जीवन की गोधूली (वय सन्धिकाल में) अवगुण्ठनवती नारी के रूप में नयी चहल-पहल बनकर आया और कवि निस्सीम गगन (विस्तृतमन) में समा गया। वह रूप की सीमा और कमनीयता-कला की सुषमा जैसा प्रतीत हुआ।

मिलन के उपरान्त सम्भोगावस्था आती है, जिसका सूक्ष्म संकेत कवि ने प्रस्तुत किया है —

'परिरंभ कुम्भ की मदिरा निश्वास मलय के झोंके।
मुखचन्द्र चाँदनी जल से मैं उठता था मुँह धोके।
"थक जाती थी सुख रजनी मुखचन्द्र हृदय में होता।
श्रम सीकर सदृश नखत से अम्बर पट भीगा होता।"

यही भाव-विह्वलता इन पंक्तियों में भी द्रष्टव्य है—

'उज्ज्वल गाथा कैसे गाऊँ मधुर चाँदनी रातों की।
अरे खिलखिलाकर हँसते होने वाली उन बातों की।
मिला कहाँ वह सुख जिसका मैं स्वप्न देखकर जाग गया ?
आलिंगन में आते-आते मुसक्याकर जो भाग गया... " (लहर-११)

प्रसाद का यह कवि किसी के 'अरुण कपोलों की मतवाली सुन्दर छाया में' विश्राम करते रहने का अभिलाषी है। उस 'प्रिय' की स्मृति ही कवि का पाथेय है। अतः जब तब उसे वही "कोमल कुसुमों की मधुर रात' याद आ जाती है। उसको अधीर यौवन और अभिलाषा का पालनपन भी अनुभव होता है—

'अधर में वह अधरों की प्यास, नयन में दर्शन का विश्वास
धमनियों में आलिंगनमयी-वेदना लिए व्यथायें नयी...।" (लहर-२१)

कवि प्रिय की 'आँखों का बचपन' भुला नहीं पाता और प्रायः कह उठता है—
'वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे।' कवि की ऐन्द्रिय अभिलाषा इन शब्दों में भी व्यक्त हुई है—' मेरी आँखों की पुतली में तू बनकर प्रान समाजा रे।" यहाँ व्यक्ति के प्रति जो आकांक्षा प्रकट हुई है, उसका स्वर स्पष्ट है। कुछ चित्रों में यह ऐन्द्रियता और स्पष्ट-रूप से उभर कर आई है, जैसे—

ये गोरे गोरे गाल हैं लाल हुए अति मोद से...। (काननकुसुम-४२)

यह सौंदर्यांकन स्थूल शृंगार का विषय है, रहस्य का नहीं यही भौतिक आकांक्षा, यत्रतत्र सर्वत्र व्यक्त हुई है। जैसे—

"तेरा प्रेम हलाहल प्यारे अब तो सुख से पीते हैं...।

केवल एक तुम्हारा चुम्बन इस मुख को चुप कर देगा।"

इस स्तर पर कवि ने प्रेम को 'मदन की छलना' (चित्राधार-१८२) कहा है और उसके क्रियात्मक दृश्य भी प्रस्तुत किए हैं—

"हाथ से हाथ लिया मैंने, हुए वे सहमा शिथिल नितान्त. ." (झरना-७२)

यहाँ वह शरीर के प्रति आकाकुल (कामाकुल) दिखता है—

'बैठा मौन चलो है चञ्चल आकुलता से आ पकड़ो।" (लहर..)

अपनी स्थूल शृंगारिक वृत्ति के कारण वह मलक्षत 'कठिन रसरेल' (झरना-८३) को प्रेम मान बैठा है।

उपर्युक्त उद्धरणों के प्रकाश में प्रसाद के प्रेम का भौतिक पक्ष प्रायः प्रकट हो जाता है।

२ आध्यात्मिक आधार'—कवि की अन्तश्चेतना प्रायः स्थूल से सूक्ष्म की ओर अग्रसर होती दिखती है। प्रसाद का साहित्यपूर्णतः निर्वैयक्तिक तो नहीं, किन्तु समष्टि में उसका पर्यवसान अवश्य हुआ है। वस्तुतः उनका लौकिक विरह क्रमशः विश्व वेदना और आनन्द के रूप में परिणत हो गया है, साथ ही उनका प्रेम सौंदर्य रहस्य-दर्शन में रूपान्तरित हो गया है। आँसू के कवि का प्रिय 'चिर सत्य और चिर सुन्दर' है। वह अवतारी भी है— ...."गौरव था, नीचे आए प्रियतम मिलने को मेरे ...'(आँसू-१७)
यह प्रेम भी व्यक्ति के बजाय समष्टि की ओर अग्रसर है—

'मेरा अनुराग फैलने दो नभ के अभिनव कलरव में।" (लहर-३६)

इन अन्तर्वाह्यसाक्ष्यों में अलौकिक आलंबन के प्रति स्पष्ट उद्‌गार है, और परोक्ष के प्रति संकेत भी। यहाँ कवि व्यक्ति के प्रति आकांक्षा नहीं प्रकट करता, बल्कि उसकी प्रेम-शीतलता की कामना करता है, जिससे प्रकट है कि उसका रूपाश्रय अत्यंत सूक्ष्म है—

'शशि सी वह सुन्दर रूप विभा चाहे न मुझे दिखलाना।

उसकी निर्मल शीतल छाया हिमकन को बिखरा जाना।' (लहर-१)

सूक्ष्म की यह लालसा कवि को उदार बनाती है। उसका एक आत्मकथन है-'मानस जलधि रहे चिर चुम्बित मेरे क्षितिज उदार बनो।" इस औदार्य द्वारा वह विरह को विश्ववेदना में केन्द्रित कर देता है, सौंदर्यानुभूति को अध्यात्म की भूमिका पर पहुँचा देता है और प्रेमानुभूति को काम तथा आनन्द की कोटि में प्रतिष्ठित कर देता है। प्रसाद का वेदनावाद इसीलिए लोककरुणा या विश्वमैत्री के रूप में समाहृत हुआ है। यहीं समष्टिमूलक अलौकिक प्रेम का समारम्भ होता है। प्रसाद का यह प्रेम बड़ा विराट है— "जिसके आगे पुलकित हो जीवन है सिसकी भरता।

हाँ, मृत्यु नृत्य करती सी मुस्काती खड़ी अमरता ..।'

इस प्रेम में उन्माद नहीं, बल्कि सान्त्वना है। इस आशा-आकांक्षा में एक अद्‌भुत तृप्ति है और इस कामना में मन. तुष्टि भी। कवि संघर्षमयी जगती से अन्तर्मुख हो गया है। इस अलौकिक प्रेमालम्बन को प्राप्त करके वह जीवन की विविधता का एकीकरण या सामंजस्य करने लगता है। इस भूमिका पर पहुँचकर कवि आत्म-विस्तार एवं प्रकृति-परक आत्मप्रक्षेपण भी करता है (यहाँ उसके मन में सौंदर्य के प्रति आसक्ति नहीं, नक्ति है। वह उपभोग की वस्तु न होकर उपासना की वस्तु बन जाता है।

स्पष्ट है कि प्रसादजी की रागात्मिका वृत्ति के दो छोर हैं। उनका प्रेम सौंदर्य-मानन्द इन्हीं दोनों स्थितियों के मध्य स्थित है। इस आध्यात्मीकरण अथवा उदात्तीकरण का एक क्रम है। कवि के शब्दों में —

'विष प्याली जो पीली थी वह मदिरा बनी नयन में।

सौंदर्य पलक प्याले का अब प्रेम बना जीवन में।'

स्पष्ट है कि उसके मन में पहले वासना का विष पहुँचा जिससे वह यौवन की मदिरा से मदो मत्त हो उठा। तभी उसका सौन्दर्यवाद जाग्रत हुआ जिससे यह प्रेमोदय हुआ। इस विष को अमृत बना लेना उसकी अनुभवसिद्ध जीवन साधना का परिणाम है। सिद्ध है कि कवि की अन्तश्चेतना ऊर्ध्वोन्मुखी और उसका आत्म समष्टि' में केन्द्रित है। अस्तु इसे मात्र भौतिकता के आवरण से ढक देना नितान्त होगा। स्पष्टतः यहाँ काम-अध्यात्म और आनन्द की त्रिवेणी है।

वस्तुतः 'प्रसाद' का प्रेम सौन्दर्य आनन्द उनकी साहित्य साधना का केन्द्र-बिन्दु है। वे व्यापक विश्व की मूलसत्ता में इनका अस्तित्व स्वीकार करते हैं और उस विश्व के नियमन तथा नियोजन में घटित करते हैं। उनकी रचनाओं में प्रेम अपना महत्तम रूप धारण कर प्रकट हुआ है। अपने उदार दृष्टिकोण तथा अपनी उदात्त विचारणा द्वारा उन्होंने इस सहज मानवीय भौतिक भावों को एक आध्यात्मिक एवं अतीन्द्रिय स्तर पर प्रतिष्ठित किया है। अपनी असयत भावुकता और कल्पना के बावजूद भी वे जीवन के इस यथार्थ से भिन्न नहीं हो पाए हैं। प्रसादजी अपने भावचित्रों में प्रेम-हास विलास, राग, शोक, शृंगार सौन्दर्य प्रेम-काम-आनन्द आदि मनोभावों के उत्थान-पतन की विविध परिस्थितियाँ अंकित करते रहे हैं पर वे इन प्रसंगों में कभी विपथा-न्मुखी नहीं हुए हैं। कवि की साहित्यिक साधना इस प्रेम-सौंदय-आनन्द-साधना के समानान्तर चलती दिखाई देती है। उनका युवाकवि ऐतिहासिक रोमांस और भौतिक लालसाओं से आक्रान्त है पर धीरे-धीरे उसमें अवस्थागत प्रौढ़ता के अनुरूप वचारिक परिप्रौढ़ता प्रकट होती दिखती है। हाँ, यह उल्लेखनीय है कि किशोर कवि की दृष्टि में सौंदर्य और प्रेम का जो गुलाबी रंग छाया हुआ था, उससे ही वह हृदय प्रकृति तथा मानव प्रकृति के अन्त सौंदर्य का सफल रेखांकन कर सका है। कवि की आरम्भिक प्रेम-खुमारी ही उनकी आत्मा से अनन्त के विलास का स्वरूप बनकर प्रकट हुई है। उन्होंने इसी से इतिहास (पुरातन प्रेम) एवं संस्कृति (समष्टि प्रेम) का समन्वय करके सौंदर्यतत्त्व की दार्शनिक अन्तर्धाराओं का समाहार किया है और इस विचार-वेदना की परिपूर्ति के लिए ही आनन्दवाद का कलात्मक प्रचार किया है।

प्रसाद की अन्तश्चेतना बहुरूपी है। बौद्ध दर्शन के धरातल पर पहुँचकर वही करुणा का रूप धारण कर जीवन की निवृत्यात्मक व्याख्या करती है और शैवदर्शन के आधार पर वही सामरस्य तथा आनन्दवाद का उद्घाटन करती है। उनके बौद्धिक चिंतन में हृदय की गुदगुदी है, और रसमिक्त मार्गों में भी वेदना की गहरी टीस है। प्रेमोल्लास के प्रसगों में उनके अन्तर की रागिनी रोती है। उनके विषाद में भी आनन्द की भूमिका होती है। उनके अतीत-प्रेम में जहाँ सास्कृतिक निष्ठा का भाव है, वहीं वर्तमान से उपरत होने का उपक्रम भी है। उनके प्रकृति-प्रेम के पीछे जहाँ नैसर्गिक आकर्षण है, वहीं कोलाहलपूर्ण ससार से विकर्षण का भाव भी है। उनमें उपभोग की क्षुधा भी है और सौंदर्य की हृदयानुभूति भी। उनमें यौवन की खुमारी भी है और पौरुष की पराकाष्ठा भी। उनके साहित्य पर सामंती युग की छाप भी है और यौवन नवयुग का नया सत्य भी है। प्रसाद-साहित्य में विलास की उष्ण गध भी है तथा अपरिग्रह की भावना भी। यह वस्तुतः पलायन नहीं, बल्कि यथार्थ जीवन की आत्म-स्वीकृति है। ससार से उन्हें मोह है, पर उसके सघर्षों के प्रति अनिच्छा है। वे जीवन को सघर्ष नहीं अपितु सत्‌चित् आनन्द' मानते हैं। उनके विचारानुसार —

'स्वास्थ्य, सरलता और सौंदर्य में प्रेम को भी मिला देने से इन तीनों की प्राण-प्रतिष्ठा हो जायगी। इन विभूतियों का एकत्र होना विश्व के लिए आनन्द का उत्स खुल जाता है।' (एक घूँट-२३)

सामान्यतः प्रसादजी दुखवाद के दार्शनिक पचड़े का समर्थन नहीं करते, क्योंकि उससे जीवन की स्वस्थता के स्थान पर जीवन की विभीषिका को प्रश्रय मिलता है। जीवन सत्रस्त होकर अस्वस्थ तथा असुन्दर हो जाता है। इस मनोग्रन्थि से बचने के लिए प्रसादजी ने स्वच्छन्दतावाद तक का समर्थन किया है। उनके शब्दों में—' आनन्दातिरेक से आत्मा [redacted] साकारता ग्रहण करना ही जीवन है। उसे सफल बनाने के लिए स्वच्छद प्रेम करना सीखना-सिखाना होगा।" विश्वचेतना में प्रसादजी दुख की स्थिति में मानते अवश्य हैं, पर उसके समुदय के साथ तिरोभाव के भी विश्वासी हैं। कामायनी में 'अपने सुख को विस्तृत कर सबको सुखी बनाने' की मानसिक साधना सविस्तार व्यक्त हुई है-

"अपने में सब कुछ भर कैसे व्यक्ति विकास करेगा।
यह एकान्त स्वार्थ भीषण है अपना नाश करेगा।
औरों को हँसते देखो मनु हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत करलो सबको सुखी बनाओ।" कामायनी के इस संदेश में 'आत्मभोग' या 'ममत्व' भावना की वर्जना की गई है और पाशवीय प्रवृत्तियों से ऊपर उठकर समष्टि-साधना की निदर्शना की गई है—'पशु से यदि हम कुछ ऊँचे हैं तो भव जलनिधि के बने सेतु।' इसमें प्रसाद के मंतव्य-विस्तार की अनुगूँज है। यहाँ उनकी ममत्ववासना, प्रेम, आनन्द, करुणा और कामाध्यात्म के रूप में उदात्तीकृत हो गई है। प्रसाद के इन सिद्धांतों में न तो रूखी नैतिकता का आतंक है और न बौद्धिक विवेक का सख्त पहरा। वे व्यवसायात्मिका वृत्ति और भौतिक बुद्धि की अति से दूर हैं। जड़वादी भोग (वासना की उपासना) से भी पृथक् हैं और 'मध्यपथ से अपनी सुगति सुधारने' के प्रयासी हैं। प्रेम-सौंदर्य-साधना के पीछे उनकी बनारसी मस्ती का भी भाव है, पर उसमें स्निग्धता ही है-रसलम्पटता नहीं।

प्रसाद का कृतित्व साहित्याध्यात्म का अनुपम उदाहरण है। उसमें आद्योपान्त आनन्द की उपासना है। प्रसाद के इस व्यक्तित्व-विकास में उनकी समसामयिक परिस्थितियों का भी योग है। उनका आरम्भिक स्वच्छंद प्रेम वस्तुतः उस युग का प्रसाद है। वे जिस वैभव और विलास से युक्त वातावरण में परिपोषित हुए थे, उसमें सुखोपभोग की विरासत उन्हें पितृ-परम्परा से प्राप्त हुयी थी। यह आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक भावनिधि भी उन्हें अपनी काशी नगरी और अपने पारिवारिक परिवेश से मिली थी।

स्पष्ट है कि प्रसाद-साहित्य की अन्तश्चेतना में जीवन के चिन्मय तत्त्व (चिदानन्द तत्त्व) की अन्तर्व्याप्ति है। उसमें लोक संग्रह की अभेदमयी सत्ता है। इसका प्रेरक सूत्र है-सौंदर्यबोध, प्रतिपाद्य है-प्रेम और साध्य है-आनन्द। इन तीनों के समाहार द्वारा उन्होंने शरीरी काम को परम तत्त्व के निकट पहुँचा दिया है। यही उनका कामाध्यात्म है। प्रसादजी काम को जीवन सर्वस्व रूप में प्रतिष्ठित करने के

अभिलाषी रहे हैं। उनका काम 'मगल मे मण्डित श्रेय सर्ग इच्छा का परिणाम' है, वह एक तरह आकांक्षा है, आशा का आह्लाद है और वही 'कर्म के भोग, भोग के कर्म' का योजक सूत्र है। कवि ने इसे परमपुरुषार्थ, आनन्द का उत्स एवं सामरस्य का साधन माना है। वस्तुत प्रसादजी काम की मध्ययुगीन अवधारणा से असहमत रहे है और उसके वैदिक (आर्योचित) स्वरूप के पुनरुद्धारक भी। उनका यह कामाध्यात्म्य इरावती, कामना, एकघूँट, कामायनी, 'आर्यावर्त्त और उसका प्रथम सम्राट', 'काव्य और कला, रहस्यवाद, 'नाटकों मे रस' आदि निबधों मे सविस्तर व्यक्त हुआ है। अस्तु प्रसाद का कामाध्यात्म्य इन्हीं भाव सरिणियों के अनुसार ग्राह्य है और फिर उनका आनन्दवाद विचारणीय है।

प्रसाद के अनुसार आनन्द की अनुभूति ही मानवीय चेतना का केन्द्र बिन्दु है। वस्तुतः यान्त्रिक सभ्यता के अभिशापवश व्यक्ति-चेतना बौद्धिक हो जाती है और अतिबौद्धिकता के कारण जीवन की सम्पूर्ण रसात्मकता समाप्त हो जाती है। वैज्ञानिक उत्कर्ष से उन्मत्त यह आद्योगिक युग व्यावसायात्मिका वृत्ति का आह्वान करता जा रहा है, इससे जीवन मे नीरसता सत्रासक चेतना, व्यर्थताबोध और अतिव्यस्तता आती जा रही है। कामने पुरुषत्व मोहवश नारी की सत्ता का विस्मरण करने वाले मनु को जो अभिशाप दिया था—'वह प्रेम न रह जाए पुनीत', वह आज मानव पर अक्षरशः घटित हो रहा है। अत. प्रकट है कि आधुनिक युग म प्रेम-सौंदर्य-काम-आनन्द आदि तत्त्वों को पुनर्प्रतिष्ठा करके प्रसाद ने ढहते हुए विश्वासों को रोका है। उनके समकालीन युग में पश्चिमी स्वच्छन्दतावाद से बोझिल, अतिबौद्धिक उपयोगितावादी यौन मनोविश्लेषण द्वारा अनुमोदित तथा कथित रोमैन्टिक प्रेम दिनो-दिन हावी होता जा रहा था, दूसरी ओर मानव-प्रेम पाशव भोग के पौनादो पजे में मसला जाकर छटपटा रहा था। अतः प्रसादजी ने इन सहज मानवीय अनुभूतियों का सत्कार करके उन्हे पुनर्स्थापित किया है। प्रसाद मूलतः प्रेम सौंदर्य-आनन्द के कवि है। भव-आतप से पीड़ित होकर उनका मन 'घने प्रेम तरु तले' बैठकर क्षण भर छाँह लने का अभिलाषी है। वे इसी अन्त-प्रेरणावश वैयक्तिक प्रेम-प्रतारण को भूलकर बृहत्तर प्रेम-योग की ओर अग्रसर हुए

हैं। सौंदर्य को समाधि द्वारा वे आनन्द की कोटि तक पहुँचने का उपक्रम करते दिखते हैं। प्रसाद का आनन्दवाद जीवन संघर्ष की प्रतिक्रिया और उनकी मौज-मस्ती की ही उदात्त परिणति है। उन्होंने बहुत पहले लिखा था—"मौज बहार की एक घड़ी, एक लम्बे दुखपूर्ण जीवन से अच्छी है। उसकी खुमारी में रूखे दिन काट लिए जा सकते हैं।" (आंधी–३७)

स्पष्ट है कि जीवन के दुःख-द्वन्द्व ने पहले उन्हें मौज बहार की ओर प्रेरित किया, धीरे-धीरे वही आनन्द के रूप में उदात्तीकृत हो गया। उनकी रसिकता शृंगार की स्थिति से आगे बढ़कर सौंदर्य में परिणत हो गयी और उनके प्रेम ने राग चेतना, कामतत्त्व तथा सामरस्य का रूप धारण कर लिया। अपने सहज विकासक्रम में इस आनन्दवाद ने शैवागम, विशेषतः प्रत्यभिज्ञा दर्शन से कई 'टेक्निकल' विचारसूत्र ग्रहण किए और इस प्रकार वह रहस्य दर्शन से सबद्ध हो गया, किन्तु इतना स्पष्ट है कि यह आनन्दवाद ही प्रसाद साहित्य की सबसे बड़ी उपलब्धि है। यह उनके साहित्य की अन्तश्चेतना का मूल स्वर है। इसके रूपान्तर प्रेम, सौंदर्य, कामाध्यात्म, मन: वैराग्य, रहस्य, दर्शन, प्रकृति आदि रूपों में दिखाई देते हैं। वस्तुत: इसमें प्रसाद-साहित्य का सर्वस्व समाहित है।



• समापन •

मानवीय चेतना में आत्मा का निदर्शन है–शरीर। उसकी अवहेलना करना निस्संदेह एक प्रकृति विद्रोह है। प्रसाद ने प्रकृत्या अपने साहित्य को प्रेम सौंदर्य-आनंद की अनुभूतियों से परिपोषित तथा अनुप्राणित किया है। सौंदर्य, प्रेम-आनंद की भूली मानवता के कल्याण की यह आदर्श कल्पना निश्चय ही इस अव्यवस्थित युग की बहुत बड़ी देन है। आधुनिक काव्य, विशेषतः छायावाद को नवीन काव्य विधा में शृंगार को विस्तृत और परिष्कृत रूप प्रस्तुत करने का प्रथम श्रेय प्रसाद को ही दिया जा सकता है। प्रसाद का कवि पहले अपने अल्हड़पन की मनोदशा में 'यौवन की संकरी कुंज-गली में' भटकता है, 'परिरम्भ-कुंभ की मदिरा' से प्रमत्त रहता है और यौवन के ज्वार का स्पर्श पाकर डूबता–उतराता है, किन्तु शीघ्र ही उदात्त सौंदर्य-बोध का कलामय स्वरूप उसकी अन्तर्दृष्टि में उद्घटित हो जाता है और वह तदनुकूल जीवन का सत्य प्रस्तुत करने लगता है। इस भाव-भूमिका पर रसीले उद्गार ही नहीं, लोकजीवन के शाश्वत उपहार भी प्रकट हुए हैं। ये उपकरण केवल कल्पना प्रधान और बौद्धिक नहीं–इसमें चिन्तन और पर्यवेक्षणजन्य तत्त्वबोध भी हैं। प्रसाद की यह रस सृष्टि उनके अन्तस्मंथन का सुपरिणाम है। यह भी सहज स्वीकार्य है कि प्रसाद-साहित्य की अन्तश्चेतना में प्रेम-सौंदर्य–आनन्द से युक्त शाश्वत जीवन बोध का सम्यक् विनियोग हुआ है।

समग्रतः यह मान्य है कि प्रसाद प्रेम-लोक के स्रष्टा और सौंदर्य लोक के द्रष्टा हैं। उन्हें प्रेम सौंदर्य आनन्द आदि का आख्याता और जीवन के अन्य तत्त्वों का उद्गाता भी कहा जा सकता है। प्रसाद की इन अनुभूतियों में कल्पना के रंग हैं, और भावना के चित्र हैं, पर साथ ही जीवन का सत्य भी है। कवि जब कल्पना के पंखों पर बैठकर उड़ता है तो यह सत्य उस पर अपने सुनहरे पंख फैलाकर छाँह किए रहता

है इसीलिए उनका साहित्य जीवनसापेक्ष है। वस्तुत समरसतामूलक आनन्दवाद उनकी साहित्य साधना का अन्तिम एवं श्रेष्ठतम पुरस्कार है।

प्रसादजी के इन साहित्यिक सिद्धान्तों के सम्बन्ध में सुधी समालोचक एकमत नहीं हो पाये हैं होना भी नहीं चाहिये क्योंकि पाण्डित्य सदैव बौद्धिक कूट तर्कों पर टिका रहता है और उसमें आस्था का अभाव रहता है। लेकिन इसप्रकार साहित्यकार की अन्तश्चेतना को न पहचान कर हम उसके साथ अन्याय करते हैं। प्रसाद-साहित्य के सम्बन्ध में भी यही स्थिति है।

आनुपातिक दृष्टि से यह सिद्ध है कि प्रसाद न मूलतः आध्यात्मिक हैं और न मूलतः शृंगारी। न उनमें सिद्ध-साधकों की ऊर्ध्व दृष्टि है और न देहवादियों का अधःप्रेक्षण। उनकी रागात्मिकावृत्ति तो सवगामी है। इस प्रकार प्रसाद योग और भोग की सीमा पर खड़े हैं। वे काम को जीवन का एक पुरुषार्थ मानते हैं और आनन्दवादी साधना का साधन भी। उनकी यह अन्तःप्रेरणा आर्य संस्कृति की देन है, जिस पर उनकी मौलिक भावुकता की छाप भी है। वे जड़ और चेतन में योग तथा काम को समान स्थिति चाहते हैं। उनका कृतिमय जीवन, कामैषणा से भरा हुआ है। आँसू कामायनी आदि का दर्शन इसी विचारपीठिका पर स्पष्ट हो सकता है। यहाँ कवि-'तप नहीं केवल जीवन-सत्य' कह कर निवृत्तिमूलक, पलायनोन्मुखी अतिबौद्धिक ऐकान्तिक एवं वैयक्तिक साधना का विरोध करता है। यह उनके साहित्य का लोकोपयोगी पक्ष है। इसी उद्देश्य से उन्होंने काम का आध्यात्मिक रूप स्वीकार किया है। वस्तुतः इस कवि का सर्वोत्कृष्ट लक्षण है-युग की समानुभूति का पोषण। सौंदर्य-बोध उनके जीवन की हृतिशक्ति है। उन्होंने काम के शब्दों में सौंदय को जलधि घोषित किया है जिसमें वासना का विष भी है और प्रेमामृत भी। प्रसाद का कवि विषपायी नहीं पीयूषपायी है। वे सौंदय जलधि से गरल पान न करकर अमृत घट लाते हैं और चित्तवृत्तियों का परिमार्जन करते हैं। उन्होंने जीवन की बौद्धिक उपयोगितावादी तथा व्यावसायिकता वृत्ति का परिहार करके जीवन को अकुण्ठ मधुर और चिरन्तन आनन्दपूर्ण बनाने के लिए इसी मिशन को परिग्रह किया है। निश्चय ही उनकी यह साहित्यिक अन्तश्चेतना अत्यंत विशद है।

—: शुद्धि-पत्र :—

पृ सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृ सं	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
पुरोवाक्	४	उदघाटित	उद्घाटित	वही	५	अन्तर्प्रेरण	अन्तर्प्रेरणा
,, २	७	सोष्ठव	सौष्ठव	३	४	प्रबन्धक	प्रबन्ध
अनुक्रम–२	६	कामाध्यात्म्य	कामाध्यात्म्य	२	१०	हे	है
३	१६	अन्तर्व्यं	अन्तर्व्यथा	३	१६	कल्पनोमुखी	कल्पनोन्मुखी
४	५	अन्दर	अन्दन	६	३	साधता	साधना
७	१०	मुमूर्ष	मुमूर्षा	६	५	हीनग्रंथि	हीनग्रन्थि
६	६	शालविका	मालविका	१०	१७	निर्लत	निर्लिप्त
१२	६	इन्द्रियग्रायी	इन्द्रियग्राही	१२	७	शरीर ही	शरीरी ही
,,	६	उमसवी	उमोसवीं	,,	२०	मृत्तिपिण्डों	मृत्पिण्डों
१४	७	सदौंर्य	सौन्दर्य	१४	२१	कडुवाहट	कड़ुवाहट
१५	५	मत	मत	१५	२४	भाषानुरुप	भाषानुरूप
१६	२	सयोजत	संयोजक	१६	६	आध्या– त्मिकत	आध्या– त्मिकता
,,	१५	सौरम	सौरभ				
१८	१७	इमानिशच	इमनिशच	१८	१९	मतिन	मलिन
१९	१७	उरनेह	उरस्नेह	२०	६	हृदय	हृदय
२२	२०	रत	रति	२४	२५	युग्म	युग
२७	४	स्वरूपा	स्वरूपा	२८	१०	आमद	आनद
२९	१०	शरीरिक	शारीरिक	२९	२५	अल्हाद, समिश्रण	आह्लाद, सम्मिश्रण
३०	२२	स्वैरणी	स्वैरिणी				
,,	२३	सुकुमार	सुकुमार	३१	३	ग्रहण	ग्रहण
३१	१३	दुर्बुद्धिय, क्रूरकर्मा	दुर्बुद्धि, क्रूरकर्मा	३२	११	नैसिगिक	नैसर्गिक
				,,	१७	घटनाविच	घटनावश
३२	२१	आदर ने ब्याह	आदर के ब्याह	,,	२४	उदगार	उद्गार
३३	११	स्दष्ट	स्पष्ट	३३	१७	अंत– प्रवृतियों	अन्त– प्रवृत्तियों

पृ स	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृ स	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३३	१७	सम्मिलत	सम्मिलित	१७	३३	मगन्ताग	मगनाणा
३३	२४	पत्र	पात्र	३४	२	प्रवित्रता	पवित्रता
३४	३	उज्जवल	उज्ज्वल	३४	१७	प्रणायिनी	प्रणयिनी
३५	२	दुदात	दुर्दान्त	३५	४	चपा	चंपा
,,	६	उपामन	उपासक	,,	६	द्यपि	यद्यपि
,,	११	सिद्धषात	सिद्धान्त	,,	१५	क्रोड	क्रोड
,,	२२	हानी	हानि	३६	१	मधुमा,	मधुमा,
३६	८	सुभार्गीक्षिणी	शुभाकांक्षिणी			पारस्पिरिक	पारस्परिक
,,	१४	चोहदा	चौदह	,,	२५	हिन	दिन
३७	६	वात्सत्य	वात्सल्य	३७	१४	योन	यौन
३८	६	मतानूसार	मतानुसार	३८	६	प्रचूर	प्रचुर
,,	११	परमपुनीत	परमपुनीत	,,	२४	स्तुति	स्तुति
,,	१६	पद्मावती,	पद्मावती			रहती	करती रहती
		मागधी	मागधी	,,	२५	पातप्राणा	पतिप्राणा
३९	११	भीषणा	भीषण	३९	२०	दाम्पत्य	दाम्पत्य
४०	२	मेरी	मेरा	४२	४	गतंव्य	मन्तव्य
४२	२०	स्वप्निल	स्वप्निल	,,	२१	कर्मीस्थत	कर्मस्थित
४३	११	को रानी	की रानी	४३	१५	सापत्य	सापत्न्य
,,	२०	हीनताथि	हीनता ग्रंथि	,,	२१	प्रद्दीप्त	प्रदीप्त
४४	१	सबधा	सम्बन्ध	४४	१०	लेख	लेख
,,	१८	अपटाचरण	कपटाचरण	,,	२४	क्लीव	क्लीब
४५	१३	वाणिक्वृत्ति	वणिकवृत्ति	४५	१८	किप्तु	किन्तु
,,	२१	अक्षुण्ण	अक्षुण्ण	,,	२४	साय	साथ
४६	६	कशोर्य	कैशोर	४६	१०	पिरत्याग	परित्याग
,,	२४	माला	माला	,,	२५	करमा है	करता है
४७	१	समास्या	समस्या	४७	१०	की थी	था
,,	१६	गार्भिणी	गर्भिणी	,,	१८	ईर्ष्यालु	ईर्ष्यालु
,,	२१	अन यता	अनन्यता	४८	७	पर	पर
४८	८	निसर्ग के	निसर्ग से	,,	११	पुत्रेच्छा	पुत्रेच्छा

४८	१२	स्वामाव	स्वमाव	४८	१३	बियोग	वियोगवश
५०	११	कोई विश्राम	कई विषम			रुग्णा	रुग्णा
	१४	मयानवे	भयावने	५१	६	प्रसादजी	प्रसादजी
५१	२२	विद्नों	विघ्नों			धारण	को धारणा
५२	८	गुजरेया	गुजरेश	५३	२	खुमारी	खुमारी
५३	२३	वेसा	वसा			कलान्तर	काला नर
५४	३	प्राणक्ता	प्राणवत्ता	५४	५	प्रमाण	प्रय ण
,	६	घरी	मरि	५५	४	पौरण	पौरव
५५	१८	को, पुष्कल	को, पुष्कल	५६	६	हुआ	हुमा
५६	११	कानमिया	कार्नेलिया	,	१३	मन्तलीन	मन्तर्लीन
	१७	मधिकारण	मधिकरण	५७	१८	नहकूसिंह	नन्हकूसिंह
५८	४	कलह को	कलह का	५८	६	गूतकाल	गुप्तकाल
	१३	प्रग म	प्रगल्भ	५६	२	सास्ती	सस्ती
५६	६	मजस	मजस	,	१४	यात्री	पात्री
,,	२३	चिरि	चिति	६०	२०	प्रतिष्ठित	प्रतिष्ठित
६०	२३	म सारिक	सासारिक	६१	४	को रट	की रट
६१	१४	निश्चिय	निश्चित	,	१५	पतियोद्धिको	प्रतियोद्धिकों
६३	६	वपु	वपु	६३	१०	नोरसे	मोरसे
.	१३	पघति	पद्धति		२०	कोलाहूल	कोलाहल
६४	१४	पाता	पाथा	६४	२३	तुलझ	सुलझ
६५	१६	मनिस्तत्व	मनस्तित्व	६५	२२	की मान्यता	के मा यता
६६	१२	मनुधरणीय	मनुकरणीय			मूसार	मुसार
,,	२०	विश्वे	विश्व	६७	३	मरना	झरना
६७	६	प्रेम	प्रेय	६८	६	मद्धप	मधप
६८	६	बर्मा मानदो	मानदो–	,	१३	अवनि	अयति
		स्वासादि	ल्लासादि	,,	२४	महिणिमा	महिणिम
६६	५	गोधुलि	गोधूली	७०	२०	पलत	फलत
७१	६	कुझों पवन	कु जों पवन	७१	१०	को	का
,	१८	उत्तेजिक	उत्तेजक	,,	१६	मलिका	मल्लिका
,,	२०	मैंहे ग्रोस्म	मैंने ग्रीष्म	७२	७	तमिसा	तमिस्रा

७२	११	शैलेन्द्र	शैलेन्द्र	७२	२३	हुए वे	हुए उन्होंने
७३	५	विरुध	बोरध	७३	८	वद	वह
,,	३१	दृष्टान्त	द्रष्टान्त	,,	२३	चिसे	जिसे
,,	२४	यहि	यही	७४	२	कायव्यग	कार्यव्यप
७४	३	समारिक	सामारिक	,	१२	ईंश्वरीय	ईश्वरीय
,,	१६	प्रमाद को	प्रसाद का	,,	२०	नूपुर	नूपुर
,,	२५	निचे	नीचे	७५	३	मुस्क्याती	मुस्क्याती
७५	१८	आसप्ति	आसक्ति	,,	२३	प्रत्य	द्रव्य
,,	२४	को भी	की भी	७६	४	चैतन्य	चैतन्य
७६	१४	अभिभुत	अभिभूत	,,	१६	को	की
,,	२०	हिमलय	हिमालय	,,	२२	को तुषार	की . तुषार
,,	२४	शृ गार. ..	शृ गार	७८	२	से उडता	चन्द्रिका से उडता
		धवल	धवल	,,	६	राता	रात
७८	७	महताव	महत्व	,,	१२	साहित्यक	साहित्यिक
,,	२५	रश्मि...	रश्मि....	७९	१७	अट्टहास्य	अट्टहास
		बुना... ने	बुने... से	८०	१२	सन्दर्य	सन्दर्भ
८०	१६	गहने	गहने पहने	,,	१७	नाल लोहित	नील लोहित
		जलधर	जलधर	८१	३	अलम्बन	आलम्बन
८२	६	की नीड	का नीड	८२	१२	प्रेंम	प्रेम
८३	८	प्रमार्पण	प्रेमार्पण	८३	१८	न्यायचित	न्यायोचित
८४	१	उपयोगी	उभयागी	८४	११	उन्मुक्त मन	उन्मुक्त मन
८५	८	उपयोगी	उभयागी	८५	१६	सापल्य	साफल्य
८६	५	शिष्ट	शिष्य	८७	१	स्वागत	स्वगत
८७	४	पतिव्रत	पातिव्रत	,,	६	भ्रात	भ्रातृ
,,	७	परित्यक्ता	परित्यक्ता	,,	१२	पूर्णता	पूर्णत
,,	१३	निष्ठाता	निष्ठा	८८	५	मतस्विता	मनस्विता
८८	१७	सवस्व	सर्वस्व	,,	१८	निश्चिय	निश्चय
,,	२१	पद्मावती	पद्मावती	८९	३	एव	एक
				,,	२३	मकरन्द	मकरन्द
९०	१	समुपयुक्त	समुपयुक्त	९०	६	मांसपेशियां	मांसपेशियां

९०	२२	प्रद्मावती	पद्मावती	,,	२५	पुर्ववेरण्य	पूर्व वरेण्य
९३	१६	मावह्विल	मावविह्विल	९४	६	सादित्य	साहित्य
९४	६	पुरुपत्व.	.पुरुपत्व	,,	१३	पुनप्राप्ति	पुनर्प्राप्ति
		ईप्यालु	ईर्ष्यालु	,,	१७	प्रक्रिय	प्रक्रिया
,,	२५	का निर्यात	की निर्यात	९५	२	स्याधि	व्याधि
९५	४	मनो–	मनो–	,,	१५	मुके	मुझे
		वेज्ञानिक	वैज्ञानिक	,,	१७	पुष्य बितते.	पष्य बिताते.
,,	१६	मब	जब			मयणित	प्रणयित
,,	२१	प्रेरणा	प्रेरणा	,,	२२	निरोह,	निरीह,
,,	२३	स्पष्ट	स्पष्ट			पुर्वास्थिति	पूर्वस्थिति
,,	२४	प्रणाविनी	प्रणयिनी	९६	१	प्रयायिनी	प्रणयिनी
९६	३	घनीभुत	घनीभूत	,,	५	उनोदी	उनींदी
,,	६	तह	वह	,,	९	तुम्हरी	तुम्हारी
,,	१०	संजाए	संजोए	,,	११	स्वोकारोक्ति	स्वीकारोक्ति
,,	१३	उप्णीम	उष्णीष	,,	१६	मुवसिनी	सुवासिनी
,,	१७	प्रतिद्व–	प्रतिद्व–	,,	१७	मनुमम	मनुमव
		न्दिवता	न्दिता	,,	२४	प्रमादजी	प्रसादजी
९७	१३	वह	×	९७	१५	देवसप्टि	देवसृष्टि
,,	१६	समप्ति	समाप्ति	,,	२१	युस्म स्पष्ट	युग्म स्पष्ट
,,	२२	प्रसादजजी	प्रसादजी	,,	२५	करता	करता है ।
९८	१	सर्वोत्कृप्ट 'पुरकार'		९८	३	विपप्नावस्था	विपन्नावस्था
			इसका सर्वोत्कृष्ट	,,	७	होतो	होती
,,	१८	प्रम	प्रेम	,,	२४	करतव्य	कर्तव्य
९९	३	हिर्षणा।	हितेषणा	९९	२२	साहचार्य	साहचर्य
		उच्चाह	उच्चाह	,,	२४-२५	बुदबुत है ।	×
,,	२५	पक	पर	,,	२५	इसका	×
१००	१	हृदय से है।	× निरस्त	१००	२०	भावों	भाव
१०१	२४	मना	माना	१०२	८	प्रमादजी	प्रसादजी
१०२	१७	बुद्धी	बुद्धि	,,	२०	स्वचन्दता	स्वच्छंदता
,,	२४	का	को	१०३	२	मोर	मोर

१०३	५	की है	की गई हैं	१०३	७	प्रस्द	प्रदर्प
१०४	११	दघे	बँधे	१०४	१२	चोत्र	चौत्र
,,	१७	मौर	धौर	,,	२०	परिणय की	परिणय
१०५	२	प्रेममी	प्रेदमी				प्रण्य की
,,	११	प्रभूतपव	प्रभूतपूर्व	१०६	३	स्नुप्स्यर्थ	स्नुस्स्पर्थ
१०६	८	नन्दपति	मन्दपति	,,	६	स्वाभावत:	स्वभावत
१०७	२०	श्रीमद्रूप	श्रीमद्रूप	१०७	२१	संवेश.	संनिवेश,
		गोस्वामी	गोस्वामी			संनिवशी	संनिवेशी
,,	२३	धात्दय	धात्वयं	१०८	२	वेगोर	वंशोर
१०८	३	हामोमुखी	ह्रासोमुखी	,,	६	शास्त्री	शास्त्रीय
,	१३	कमायनी	कामायनी	,,	१४	सम्मोहन	सम्मोहन
,,	१८	करना	करता	,	२५	गुड	गूढ़
१०९	७	प्यार	प्यास	१०९	९	मुद्ध	बुध
,	२२	पूर्णनिमा	पूर्णिमा	११०	३	आँसु	आँसू
११०	७	ठहरी	ठहर	,,	१०	मुमुह्य	सुमह्य
,,	२१	प्रेदान	प्रदान	१११	२	निश्चह	निश्चय
१११	४	विचार-	विचार	,,	१५	कर, करता	करता
		रणीह	रणीय	११२	८	मयोर्गति	मयोगति
११३	११	युगबोध	युग्बोध	११४	२	मनुस्यूत	मनुस्यूत
		मे	मे	,,	५	स्पष्ट,	स्पष्टत
११४	७	सौंदर्यवेत	सौन्दर्यवेत्ता			सौन्दर्यनिष्ट	सौंदर्यनिष्ट
११५	१८	रूप	रूप का	११६	८	की कवि	का कवि
		अनिवार्य	अनिवार्य ,,		६	प्रमुष्य	मनुष्य
११६	१३	कृम	क्रम	,,	२५	एवस्य	एकस्य
११७	१	उत्तमा	उत्तमा	११७	१०	का दृष्टि	की दृष्टि
,,	२४	प्रमावन	प्रमावान	११८	१०	मधु	मधु
११८	२१	विमूषित	विभूषित	११९	२१	स्वस्थ्य	स्वस्थ
१२०	१४	इन्द्रीवर	इन्दीवर	१२०	१९	सुरनि	सुरभि
,,	२४	सुगाठित	सुघटित	१२१	२	सूटर	सुंदर
१२१	१८	सुदव-	सुभाव-	,,	२२	आकर,	आकार,
		लोकन	लोकन			वर्ग	वर्ग

१२२	६	चपक,	चपक,	१२२	१४	चवम,	चवल,
		ललई	ललाई			चितावन	चितवन
१२३	६	सुन्दरी,	सुन्दरी,	१२३	११	उभरा	उभारा
		कसांमूलों	कसांमूलों	,,	१३	केन्द्रित	केंद्रित
१२५	३	रहस्यमता	रहस्यमयता	१३५	५	नश्चय	निश्चय
,,	१३	आंसु	आँसू	,,	१६	मे बोल	में कोकिल बोल
,,	२१	थूल	फूल	,,	२४	बिम्ब	बिम्ब
१२६	१४	पादे	पाले	१२६	१७	यौवना	यौवन
,,	२३	मनोमोग	मनोयोग	१२७	११	अनवरता	अनवरत
१२७	१६	मदह्विवल	मदविह्वल	,,	२३	रूप मे	के रूप मे
१२८	२४	कशोर,	कैशोर,	१२६	६	पित	पति
		कुमार	कुमार	,	१८	उनके	उनकी
१३०	७	सम्गुम्पित	सम्गुम्फित	१३०	१३	श्यामा	श्याम
,,	२३	या अज-	अलकावली	१३१	२	विलाम्बित	विलम्बित
		कावली		,,	१०	सूकोमलता	सुकोमलता
१३१	११	गुल्मचुम्बो	गुल्मचुम्बी	१३२	१	सुवालित	सुवासित
१३२	१३	अनत्तक	अलक्तक	,	२४	का	की
१३३	१०	रणग,	रणन,	१३३	१६	कूणित	क्वणित
		आत्वाभरण	आत्वाभरण	,,	१८	माणि	मणि
,,	२२	कठ,कपु	कठ, कबु	१३४	२	कर्णावतस	कर्णावतस
१३४	८	मणिक्य	माणिक्य	,,	१६	इन्दजाल	इन्द्रजाल
,,	२१	तातों को	×	१३५	१७	शास्त्रास्त्रों	शस्त्रास्त्रों
१३६	१६	निपेधें	निपेधों	१३६	१७	पूणं	पूर्ण
१३७	६	व्यक्तितत्व	व्यक्तित्व	१३७	८	जाति	प्रति
,,	१४	कर्तव्य	वक्तव्य	,,	१८	विवेचन	का विवेचन
,,	२०	अनुगुंज,	अनुगूंज,	१३८	५	प्रमादजी	प्रसादजी की
		आंसु	आंसू	,,	२५	व्यथायें	व्यथाएं
१३९	१६	अन्तदवेचना	अन्तश्चेतना	१४०	१५	अद्मृत	अद्भुत
१४१	५	नितांन	नितान्त	१४१	११	आकांक्षी	आकांक्षा
		होगा	असगत होगा	,,	१६	विपयो मुखी,	विपयान्मुखी,

१४२	१०	पौरुष	×	१४१	१६	साहित्यक	साहित्यिक
,,	१६	स्नग्धता	स्निग्धता	१४२	२२	मे	से
,,	२४	में	×	१४३	१३	रसलन	स्खलन
१४३	२२	का	की	,,	२४	द्वार	द्वारा
१४४	२	तरन	तरह	१४४	८	सरिणयों	सर्णियों
,,	२३	धावप	धातप	,,	२५	प्रभारण	प्रतारणा
१४६	११	उद्घटित	उद्घाटित	१४६	१८	समग्रहन:	समग्रत:
१४७	१२	अन्तप्रेरणा,	अन्तर्प्रेरणा,	१४७	१४	कामादनी	कामायनी
		सहृति	संस्कृति	,,	१६	प्लायनोन्मुखी	पलायनोन्मुखी

— आदि, क्षमापूर्वक।